

सूची



		पृष्ठसंख्या
१ राजा हरदौल	१
२ रानी सारन्धा	१५
३ मर्यादाकी वेदी	३२
४ पापका अशिकुण्ड	४८
५ जुगुनूकी चमक	५९
६ घोखा	७०
७ अमावास्याकी रात	७९
८ ममता	८९
९ पछतावा	१०३

नव-निधि

राजा हरदौल

बुन्देलखण्डमें ओरछा पुराना राज्य है। इसके राजा बुन्देले हैं। इन बुन्देलोंने पहाड़ोंकी घाटियोंमें अपना जीवन बिताया है। एक समय ओरछेके राजा जुझारसिंह थे। ये बड़े साहसी और बुद्धिमान् थे। शाहजहाँ उस समय दिल्लीके बादशाह थे। जब खॉजहाँ लोदीने बलवा किया और वह शाही मुल्कको लूटता-प्याटता ओरछेकी ओर आ निकला, तब राजा जुझारसिंहने उससे मोरचा लिया। राजाके इस कामसे गुणग्राही शाहजहाँ बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने तुरन्त ही राजाको दम्तिवनका शासन-भार सौंपा। उस दिन ओरछेमें बड़ा आनन्द मनाया गया। शाही दूत खिलअत और सनद लेकर राजाके पास आया। जुझारसिंहको बड़े बड़े काम करनेका अवसर मिला। सफरकी तैयारियाँ होने लगीं, तब राजाने अपने छोटे भाई हरदौलसिंहको बुलाकर कहा, “भैया, मैं तो जाता हूँ। अब यह राज-पाट तुम्हारे सुपुर्द है। तुम भी इसे जीसे प्यार करना। न्याय ही राजाका सबसे बड़ा सहायक है। न्यायकी गदीमें कोई शत्रु नहीं घुस सकता, चाहे वह रावणकी सेना या इन्द्रका बल लेकर आवे। पर न्याय वही सच्चा है, जिसे प्रजा भी न्याय समझे। तुम्हारा काम केवल न्याय ही करना न होगा, बल्कि प्रजाको

मनका भी राजा हो गया, जो मुल्क और मालपर राज करनेसे भी कठिन है। इस प्रकार एक वर्ष बीत गया। उधर दक्खनमें जुझारसिंहने अपने प्रबन्धसे चारों ओर शाही दबदबा जमा दिया, इधर ओरछेमें हरदौलने प्रजापर मोहन-मन्त्र फूँक दिया।

२

फाल्गुनका महीना था, अबीर और गुलालसे जमीन लाल हो रही थी। कामदेवका प्रभाव लोगोंको भड़का रहा था। रबीने खेतोंमें सुनहला फर्श बिछा रक्खा था और खलिहानोंमें सुनहले महल उठा दिये थे। सन्तोष इस सुनहले फर्शपर इठलाता फिरता था और निश्चिन्तता इस सुनहले महलमें तानें अलाप रही थी। इन्हीं दिनों दिल्लीका नामवर फेकैत कादिर खाँ ओरछे आया। बड़े बड़े पहलवान उसका लोहा मान गये थे। दिल्लीसे ओरछे तक सैकड़ों मर्दानगीके मदसे मतवाले उसके सामने आये, पर कोई उससे जीत न सका। उससे लड़ना भाग्यसे नहीं, बल्कि मौतसे लड़ना था। वह किसी इनामका भूखा न था, जैसा ही दिलका दिलेर था, वैसा ही मनका राजा था। ठीक होलीके दिन उसने धूमधामसे ओरछेमें सूचना दी कि “सुदाका शेर दिल्लीका कादिरखाँ ओरछे आ पहुँचा है। जिसे अपनी जान भारी हो, आकर अपने भाग्यका निपटारा कर ले।” ओरछेके बड़े बड़े बुन्देले सूमा यह धमण्ड-भरी बाणी सुनकर गरम हो उठे। फाग और डफकी तानके बदले ढोलकी वीर-ध्वनि सुनाई देने लगी। हरदौलका जखाड़ा ओरछेके पहलवानों और फेकैतोंका सबसे बड़ा अड्डा था। सन्ध्याको यहाँ मारे शहरके सूमा जमा हुए। कालदेव और भालदेव बुन्देलोंकी नाक थे, सैकड़ों मैदान मारे हुए। यही दोनों पहलवान कादिरखाँका धमण्ड चूर करनेके लिए गये।

दूसरे दिन किलेके सामने तालाबके किनारे बड़े मैदानमें ओरछेके छोटे-बड़े सभी जमा हुए। कैसे कैसे सजीले अलबेले जवान थे,—सिरपर खुशरंग बाँकी पगड़ी, माथेपर चन्दनका तिलक, आँखोंमें मर्दानगीका सल्लर, कमरोंमें तलवार। और कैसे कैसे बूढ़े थे,—तनी हुई भूँछें, सादी पर तिरछी पगड़ी, कानोंसे बाँधी हुई दाडियाँ, देखनेमें तो बूढ़े पर काममें जवान, किसीको कुछ न समझनेवाले। उनकी मर्दाना चाल-ढाल नौजवानोंको लजाती थी। हर-एकके मुँहसे वीरताकी बातें निकल रही थी। नौजवान कहते थे—देखो,

अपने न्यायका विश्वास भी दिलाना होगा। और मैं तुम्हें क्या समझाऊँ, तुम स्वयं समझदार हो।”

यह कहकर उन्होंने अपनी पगड़ी उतारी और हरदौलसिंहके सिरपर रख दी। हरदौल रोता हुआ उनके पैरोंने लिपट गया। इसके बाद राजा अपनी रानीसे विदा होनेके लिए रनवास आये। रानी दरवाजेपर खड़ी रो रही थी। उन्हें देखते ही पैरोंपर गिर पड़ी। जुझारसिंहने उठाकर उमे छातीसे लगाया और कहा, “प्यारी, यह रोनेका समय नहीं है। बुन्देलोंकी ब्रियाँ ऐसे अवसरोंपर रोया नहीं करती। ईश्वरने चाहा, तो हम-जुम जन्द मिलेंगे। मुझपर ऐसी ही प्रीति रखना। मैंने राजपाट हरदौलको सौंपा है वह अभी लडका है। उसने अभी दुनिया नहीं देखी है। अपनी मन्नाहोंसे उनकी मत्त करती रहना।”

रानीकी जवान बन्द हो गई। वह अपने मनमें कहने लगी, हाय, यह कहते हैं, बुन्देलोंकी ब्रियाँ ऐसे अवसरोंपर रोया नहीं करती! शायद उनके हृदय नहीं होता, या अगर होता है तो उसमें प्रेम नहीं होता।” रानी कलेजे-पर पत्थर रखकर आँसू पी गई और हाथ जोड़कर राजाकी ओर मुसकुराती हुई देखने लगी। पर क्या वह मुसकुराहट थी? जिस तरह अँधेरे मैदानमें मशालकी रोशनी अँधेरेको और भी अथाह कर देती है; उसी तरह रानीकी मुसकुराहट उसके मनके अथाह दुःखको और भी प्रकट कर रही थी।

जुझारसिंहके चले जानेके बाद हरदौलसिंह राज करने लगा। थोड़े ही दिनोंमें उसके न्याय और प्रजा-वात्सल्यने प्रजाका मन हर लिया। लोग जुझारसिंहको भूल गये। जुझारसिंहके शत्रु भी थे और मित्र भी। पर हरदौलसिंहका कोई शत्रु न था, सब मित्र ही थे। वह ऐसा हँसमुख और मधुर-भाषी था कि उससे जो दो बातें कर लेता, वही जीवन-भर उसका भक्त बना रहता। राज-भरमें ऐसा कोई न था जो उसके पासतक न पहुँच सकता हो। रात-दिन उसके दरवारका फाटक सबके लिए खुला रहता था। ओरछेको कभी ऐसा सर्वप्रिय राजा नसीब न हुआ था। वह उदार था, न्यायी था, विद्या और गुणका ग्राहक था। पर सबसे बड़ा गुण जो उसमें था वह उसकी वीरता थी। उसका यह गुण हृद दर्जेको पहुँच गया था। जिस जातिके जीवनका अवलम्ब तलवारपर है, वह अपने राजाके किसी गुणपर इतना नहीं रीझती जितना उसकी वीरतापर। हरदौल अपने गुणोंसे अपनी प्रजाके

आज ओरछेकी लाज रहती है या नहीं। पर बूढ़े कहते—ओरछेकी हार कभी नहीं हुई और न होगी। वीरोंका यह जोग देखकर राजा हरदौलने बड़े जोरसे कह दिया, “खुबन्दार, बुन्देलोंकी लाज रहे या न रहे, पर उनकी प्रतिष्ठामें बल न पड़ने पावे। यदि किसीने औरोंको यह कहनेका अवसर दिया कि ओरछेवाले तलवारसे न जीत सके तो घोंघली कर बैठे, वह अपनेको जातिका शत्रु समझे।”

सूर्य निकल आया था। एकाएक नगाड़ेपर चोत्र पड़ी और आगा तथा भयने लोगोंके मनको उछालकर मुंहतक पहुँचा दिया। कालदेव और कादिरखॉ दोनों लगेट कसे शेरोंकी तरह अखाड़ेमें उतरे और गले मिल गये। तब दोनों तरफसे तलवारें निकलीं और दोनोंके बगलोंमें चली गईं। फिर बादलके दो टुकड़ोंसे बिजलियाँ निकलने लगीं। पूरे तीन घण्टेतक यही मालूम होता रहा कि दो अगारे हैं। हजारों आदमी खड़े तमाशा देख रहे थे और मैदानमें आधी रातका-सा सन्नाटा छाया था। हाँ, जब कभी कालदेव कोई गिरहदार हाथ चलाता या कोई पेचदार बार बचा जाता, तो लोगोंकी गर्दनें आप ही आप उठ जातीं, पर किसीके मुँहसे एक शब्द भी नहीं निकलता था। अखाड़ेके अन्दर तलवारोंकी खींच-तान थी, पर देखने-वालोंके लिए अखाड़ेसे बाहर मैदानमें इससे भी बढ़कर तमाशा था। बार बार जातीय प्रतिष्ठाके विचारसे मनके भावोंको रोकना और प्रसन्नता या दुःखका शब्द मुँहसे बाहर न निकलने देना तलवारोंके बार बचानेसे अधिक कठिन काम था। एकाएक कादिरखॉ ‘अल्लाहो अकबर’ चिल्लाया, मानों बादल गरज उठा और उसके गरजते ही कालदेवके सिरपर बिजली गिर पड़ी।

कालदेवके गिरते ही बुन्देलोंको सन्न न रहा। हर एक चेहरेपर निर्बल क्रोध और कुचले हुए धमण्डकी तसवीर खिंच गई। हजारों आदमी जोशमें आकर अखाड़ेपर दौड़े, पर हरदौलने कहा—खुबन्दार! अब कोई आगे न बढे। इस आवाज़ने पैरोंके साथ जंजीरका काम किया। दर्शकोंको रोककर जब वे अखाड़ेमें गये और कालदेवको देखा, तो आँखोंमें आँसू भर आये। जखमी शेर जमीनपर पड़ा तडप रहा था। उसके जीवनकी तरह उसकी तलवारके दो टुकड़े हो गये थे।

आजका दिन बीता, रात आई। पर बुन्देलोंकी आँखोंमें नींद कहाँ।

कुलीना—क्या भालदेव मारा गया ?

हरदौल—नहीं, जानसे तो नहीं, पर हार हो गई ।

कुलीना—तो अब क्या करना होगा ?

हरदौल—मैं स्वयं इसी सोचमें हूँ । आजतक ओरछेको कभी नीचा न देखना पड़ा था । हमारे पास धन न था; पर अपनी वीरताके सामने हम राज और धनको कोई चीज़ नहीं समझते थे । अब हम किस मुँहसे अपनी वीरताका घमण्ड करेंगे ?—ओरछेकी और बुंदेलोंकी लाज अब जाती है ।

कुलीना—क्या अब कोई आस नहीं है ?

हरदौल—हमारे पहलवानोंमें वैसा कोई नहीं है जो उससे बाजी ले जाय । भालदेवकी हारने बुंदेलोंकी हिम्मत तोड़ दी है । आज सारे शहरमें शोक छाया हुआ है । सैकड़ों घरोंमें आग नहीं जली । चिराग़ रोशन नहीं हुआ । हमारे देश और जातिकी वह चीज़ जिससे हमारा मान था अब अन्तिम साँस ले रही है । भालदेव हमारा उस्ताद था । उसके हार चुकनेके बाद मेरा मैदानमें आना धृष्टता है, पर बुंदेलोंकी साख जाती है तो मेरा सिर भी उसके साथ जायगा । कादिरख़ाँ वेशक अपने हुनरमें एक ही है, पर हमारा भालदेव कभी उससे कम नहीं । उसकी तलवार यदि भालदेवके हाथमें होती तो मैदान जरूर उसके हाथ रहता । ओरछेमें केवल एक तलवार है जो कादिरख़ाँकी तलवारका मुँह मोड़ सकती है । वह भैरव्याकी तलवार है । अगर तुम ओरछेकी नाक रखना चाहती हो, तो उसे मुझे दे दो । यह हमारी अन्तिम चेष्टा होगी । यदि इस बार भी हार हुई तो ओरछेका नाम सदैवके लिए डूब जायगा ।

कुलीना सोचने लगी, तलवार इनको दूँ या न दूँ । राजा रोक गये हैं । उनकी आज्ञा थी कि किसी दूसरेकी परछाहीं भी उसपर न पड़ने पावे । क्या ऐसी दशामें मैं उनकी आज्ञाका उल्लंघन करूँ, तो वे नाराज होंगे ? कभी नहीं । जब वे सुनेंगे कि मैंने कैसे कठिन समयमें तलवार निकाली है, तो उन्हें सच्ची प्रसन्नता होगी । बुंदेलोंकी आन किसको इतनी प्यारी है ? उनसे ज्यादा ओरछेकी भलाई चाहनेवाला कौन होगा ? इस समय उनकी आज्ञाका उल्लंघन करना ही आज्ञा मानना है । यह सोचकर कुलीनाने तलवार हरदौलको दे दी ।

सवेरा होते ही यह खबर फैल गई कि राजा हरदौल कादिरख़ाँसे

बैचैन करती रही। आह ओरछा ! वह दिन कब आवेगा कि फिर तेरे दर्शन होंगे ! राजा मंजिलें मारते चले आते थे, न भूख थी, न प्यास, ओरछेवालोंकी मुहब्बत खींचे लिये आती थी। यहाँतक कि ओरछेके जंगलोंमें आ पहुँचे। साथके आदमी पीछे छूट गये। दोपहरका समय था। धूप तेज थी। वे घोड़ेसे उतरे और एक पेड़की छाँहमें जा बैठे। भाग्यवश आज हरदौल भी जीतकी खुशीमें शिकार खेलने निकले थे। सैकड़ों बुन्देला सरदार उनके साथ थे। सब अभिमानके नशेमें चूर थे। उन्होंने राजा जुझारसिंहको अकेले बैठे देखा, पर वे अपने घमण्डमें इतने डूबे हुए थे कि इनके पासतक न आये। समझा कोई यात्री होगा। हरदौलकी आँखोंने भी धोखा खाया। वे घोड़ेपर सवार अकबते हुए जुझारसिंहके सामने आये और पूछना चाहते थे कि तुम कौन हो कि भाईसे आँख मिल गई। पहचानते ही घोड़ेसे कूद पड़े और उनको प्रणाम किया। राजाने भी उठकर हरदौलको छातीसे लगा लिया। पर उस छातीमें अब भाईकी मुहब्बत न थी। मुहब्बतकी जगह ईर्ष्याने घेर ली थी, और वह केवल इसीलिए कि हरदौल दूरसे नंगे पैर उनकी तरफ न दौड़ा, उसके सवारोंने दूरहीसे उनकी अभ्यर्थना न की। सन्ध्या होते होते दोनों भाई ओरछे पहुँचे। राजाके लौटनेका समाचार पाते ही नगरमें प्रसन्नताकी दुंदुभी बजने लगी। हर जगह आनन्दोत्सव होने लगा और तुरताफुरती सारा शहर जगमगा उठा।

आज रानी कुलीनाने अपने हाथों भोजन बनाया। नौ बजे होंगे। लौंडीने आकर कहा—महाराज, भोजन तैयार है। दोनों भाई भोजन करने गये। सोनेके थालमें राजाके लिए भोजन परोसा गया और चाँदीके थालमें हरदौलके लिए। कुलीनाने स्वयं भोजन बनाया था, स्वयं थाल परोसे थे, और स्वयं ही सामने लाई थी, पर दिनोंका चक्र कहो, या भाग्यके दुर्दिन, उसने भूलसे सोनेका थाल हरदौलके आगे रख दिया और चाँदीका राजाके सामने। हरदौलने कुछ ध्यान न दिया। वह वर्ष-भरसे सोनेके थालमें खाते खाते उसका आदी हो गया था, पर जुझारसिंह तलमला गये। जवानसे कुछ न बोले, पर तीवर बदल गये और मुँह लाल हो गया। रानीकी तरफ घूर कर देखा और भोजन करने लगे, पर ग्रास विष मालूम होता था। दो-चार ग्रास खाकर उठ आये। रानी उनके तीवर देखकर डर गई। आज कैसे न उसे उसने भोजन बनाया था, कितनी प्रतीक्षाके बाद यह शुभ दिन आया

मेघ बनाकर रानी शीघ्रमहलकी ओर चली। पैर आगे बढ़ते थे, पर मन पीछे हटा जाता था। दरवाजेतक आई; पर भीतर पैर न रख सकी। दिल घड़ने लगा। ऐसा जान पड़ा मानो उसके पैर थर्रा रहे हैं। राजा जुझारविह बोले—
“कौन है?—कुलीना! भीतर क्यों नहीं आ जाती?”

कुलीनाने जी कड़ा करके कहा—महाराज, कैसे आज्ञा! मैं अपनी जगह क्रोधको बैठा पाती हूँ।

राजा—यह क्यों नहीं कहती कि मन दोगी है, इसलिए आँखें नहीं मिलाने देता?

कुलीना—निस्सन्देह मुझसे अपराध हुआ है, पर एक अबला आपसे क्षमाका दान माँगती है।

राजा—इसका प्रायश्चित्त करना होगा।

कुलीना—क्यों कर?

राजा—हरदौलके खूनसे।

कुलीना सिरसे पैरतक काँप गई। बोली—क्या इसलिए कि आज मेरी भूलसे ज्योनारके थालोंमें उलट-फेर हो गया?

राजा—नहीं, इसलिए कि तुम्हारे प्रेममें हरदौलने उलट-फेर कर दिया!

जैसे आगकी आँचसे लोहा लाल हो जाता है, वैसे ही रानीका मुँह लाल हो गया। क्रोधकी अग्नि सद्भावोंको भस्म कर देती है, प्रेम और प्रतिष्ठा, दया और न्याय, सब जलके राख हो जाते हैं। एक मिनटतक रानीको ऐसा मालूम हुआ, मानो दिल और दिमाग दोनों खौल रहे हैं। पर उसने आत्म-दमनकी अन्तिम चेष्टासे अपनेको संभाला, केवल इतना बोली—हरदौलको मैं अपना लड़का और भाई समझती हूँ।

राजा उठ बैठे और कुछ नर्म स्वरसे बोले—नहीं, हरदौल लड़का नहीं है, लड़का मैं हूँ जिसने तुम्हारे ऊपर विश्वास किया। कुलीना, मुझे तुमसे ऐसी आशा न थी। मुझे तुम्हारे ऊपर घमंड था। मैं समझता था, चाँद-सूर्य टल सकते हैं, पर तुम्हारा दिल नहीं टल सकता। पर आज मुझे मालूम हुआ कि वह मेरा लड़कपन था। बड़ोंने सच कहा है कि, स्त्रीका प्रेम पानीकी धार है, जिस ओर ढाल पाता है, उधर ही वह जाता है। सोना ज्यादा गर्म होकर पिघल जाता है।

अधिकार और मान नहीं देखा जाता, तो क्यों साफ साफ ऐसा नहीं कहते ? क्यों मरदोंकी लड़ाई नहीं लड़ते ? क्यों स्वयं अपने हाथसे उसका सिर नहीं काटते और मुझसे वह काम करनेको कहते हो ? तुम खूब जानते हो, मैं नहीं कर सकती । यदि मुझसे तुम्हारा जी उकता गया है, यदि मैं तुम्हारी जानकी जंजाल हो गई हूँ, तो मुझे काशी या मथुरा भेज दो । मैं बेखटके चली जाऊँगी । पर ईश्वरके लिए मेरे सिर इतना बड़ा कलंक न लगने दो । पर मैं जीवित ही क्यों रहूँ ? मेरे लिए अब जीवनमें कोई सुख नहीं है । अब मेरा मरना ही अच्छा है । मैं स्वयं प्राण दे दूँगी, पर यह महापाप मुझसे न होगा । विचारोने फिर पलटा खाया । तुमको पाप करना ही होगा । इससे बड़ा पाप शायद आजतक सत्सारमें न हुआ हो; पर यह पाप तुमको करना होगा । तुम्हारे पातिव्रतपर सन्देह किया जा रहा है और तुम्हें इस सन्देहको मिटाना होगा । यदि तुम्हारी जान जोखिममें होती, तो कुछ हर्ज न था । अपनी जान देकर हरदौलको बचा लेती । पर इस समय तुम्हारे पातिव्रतपर आँच आ रही है । इसलिए तुम्हें यह पाप करना ही होगा और पाप करनेके बाद हँसना और प्रसन्न रहना होगा । यदि तुम्हारा चित्त तनिक भी विचलित हुआ, यदि तुम्हारा मुखड़ा जरा भी मद्धम हुआ, तो इतना बड़ा पाप करनेपर भी तुम सन्देह मिटानेमें सफल न होगी । तुम्हारे जीपर चाहे जो बीते, पर तुम्हें यह पाप करना ही पड़ेगा । परतु कैसे होगा ? क्या मैं हरदौलका सिर उतारूँगी ? यह सोचकर रानीके शरीरमें कँपकँपी आ गई । नहीं, मेरा हाथ उसपर कभी नहीं उठ सकता । प्यारे हरदौल, मैं तुम्हें विप नहीं खिला सकती । मैं जानती हूँ, तुम मेरे लिए आनन्दसे विपका बीड़ा खा लोगे । हाँ, मैं जानती हूँ, तुम 'नहीं' न करोगे । पर मुझसे यह महापाप नहीं हो सकता, एक बार नहीं, हजार बार नहीं हो सकता ।

४

हरदौलको इन बातोंकी कुछ भी खबर न थी । आधी रातको एक दासी रोती हुई उसके पास गई और उसने उससे सब समाचार अक्षर अक्षर कह सुनाया । वह दासी पान-दान लेकर रानीके पीछे पीछे राजमहलसे दरवाजेतक गई थी और सब बातें मुनकर आई थी । हरदौल राजाका ढग देखकर पहले ही ताड़ गया था कि राजाके मनमें कोई न कोई कौटा अवश्य खटक

राजा कभी पानकी ओर ताकते और कभी मूर्तिकी ओर, गायद उनके विचारने इस विपकी गोंठ और उस मूर्तिमें एक सम्बन्ध पैदा कर दिया था। उस समय जो हरदौल एकाएक घरमें पहुँचे तो राजा चौंक पड़े। उन्होंने सँभल कर पूछा, “ इस समय कहाँ चले ? ”

हरदौलका मुखड़ा प्रफुल्लित था। वह हँसकर बोला, ‘ कल आप यहाँ पधारे हैं, इसी खुशीमें मैं आज गिकार खेलने जाता हूँ। आपको ईश्वरने अजित बनाया है, मुझे अपने हाथमें विजयका वीड़ा दीजिए । ”

यह कहकर हरदौलने चौकीपरसे पान-दान उठा लिया और उसे राजाके सामने रखकर वीड़ा लेनेके लिए हाथ बढ़ाया। हरदौलका खिला हुआ मुखड़ा देखकर राजाकी ईर्ष्याकी आग और भी भड़क उठी।—दुष्ट, मेरे धावपर नमक छिड़कने आया है। मेरे मान और विश्वासको मिट्टीमें मिलानेपर भी तेरा जी न भरा। मुझसे विजयका वीड़ा माँगता है। हाँ, यह विजयका वीड़ा है। पर तेरी विजयका नहीं, मेरी विजयका।

इतना मनमें कहकर जुझारसिंहने वीड़ेका हाथमें उठाया। वे एक क्षणतक कुछ सोचते रहे, फिर मुसकुराकर हरदौलको वीड़ा दे दिया। हरदौलने तिर झुकाकर वीड़ा लिया, उसे माथेपर चढ़ाया, एक बार बड़ी ही करुणाके साथ चारों ओर देखा और फिर वीड़ेको मुँहमें रख लिया। एक सच्चे राजपूतने अपना पुरुषत्व दिखा दिया। विप हालाहल था, कण्ठके नीचे उतरते ही हरदौलके मुखड़ेपर मुर्दनी छा गई और आँखें बुझ गईं। उसने एक ठण्डी सॉस ली, दोनों हाथ जोड़कर जुझारसिंहको प्रणाम किया और जमीनपर बैठ गया। उसके ललाटपर पसीनेकी ठण्डी ठण्डी बूँदे दिखाई दे रही थीं और सॉस तेजीसे चलने लगी थी, पर चेहरेपर प्रसन्नता और सन्तोषकी झलक दिखाई देती थी।

जुझारसिंह अपनी जगहसे जरा भी न हिले। उनके चेहरेपर ईर्ष्यासे भरी हुई मुसकुराहट छाई हुई थी, पर आँखोंमें आँसू भर आये थे। उज्जले और अंधेरेका मिलाप हो गया था।

चित्तमें उदारता । उन्होंने चम्पतरायकी वीरताकी कथायें सुनी थीं, इसलिए उनका बहुत आदर सम्मान किया, और कालपीकी बहुमूल्य जागीर उनको भेंट की, जिसकी आमदनी नौ लाख थी । यह पहला अवसर था कि चम्पतरायको आधे दिनके लड़ाई-झगड़ेमें निवृत्ति मिली और उसके साथ ही भोग-विलासका प्राशस्त्य हुआ । रात-दिन आमोद-प्रमोदकी चर्चा रहने लगी । राजा विलासमें डूबे, गनियाँ जड़ाऊ गहनोंपर रीझीं । मगर सारन्धा इन दिनों बहुत उदास और सकुचित रहती । वह इन रहस्योंसे दूर दूर रहती, ये नृत्य और गानकी मभाये उसे सूनी प्रतीत होतीं ।

एक दिन चम्पतरायने सारन्धामें कहा—सारन, तुम उदास क्यों रहती हो ? मैं तुम्हें कभी हँसते नहीं देखता । क्या मुझसे नाराज हो ?

सारन्धाकी आँखोंमें जल भर आया । बोली—स्वामीजी, आप क्यों ऐसा विचार करते हैं ? जहाँ आप प्रसन्न हैं वहाँ मैं भी खुश हूँ ।

चम्पतराय—मैं जबसे यहाँ आया हूँ, मैंने तुम्हारे मुख-कमलपर कभी मनोहारिणी मुस्कराहट नहीं देखी । तुमने कभी अपने हाथोंसे मुझे बीबा नहीं खिलाया । कभी मेरी पाग नहीं सँवारी । कभी मेरे गरीरपर शस्त्र न सजाये । कहीं प्रेम-लता मुरझाने तो नहीं लगी ?

सारन्धा—प्राणनाथ, आप मुझसे ऐसी बात पूछते हैं जिसका उत्तर मेरे पास नहीं है । यथार्थमें इन दिनों मेरा चित्त कुछ उदास रहता है । मैं बहुत चाहती हूँ कि खुश रहूँ, मगर बोझ-सा हृदयपर धरा रहता है ।

चम्पतराय स्वयं आनन्दमें मग्न थे । इसलिए उनके विचारमें सारन्धाको असन्तुष्ट रहनेका कोई उचित कारण नहीं हो सकता था । वे भौहें सिकोड़कर बोले—मुझे तुम्हारे उदास रहनेका कोई विशेष कारण नहीं मालूम होता । ओरछेमें कौन-सा सुख था जो यहाँ नहीं है ?

सारन्धाका चेहरा लाल हो गया । बोली—मैं कुछ कहूँ, आप नाराज तो न होंगे ?

चम्पतराय—नहीं, शौकसे कहो ।

सारन्धा—ओरछेमें मैं एक राजाकी रानी थी । यहाँ मैं एक जागीरदारकी चेरी हूँ । ओरछेमें मैं वह थी जो अवधमें कौशल्या थी, परन्तु यहाँ मैं बादशाहके एक सेवककी स्त्री हूँ । जिस बादशाहके सामने आज आप खड़े सिर झुकाते हैं वह कल आपके नामसे काँपता था । रानीसे चेरी

रानी—वह आपकी चीज़ नहीं, मेरी है। मैंने उसे रण-भूमिमें पाया है और उसपर मेरा अधिकार है। क्या रण-नीतिकी इतनी मोटी बात मैं आप नहीं जानते ?

ख़ासाहब—वह घोड़ा मैं नहीं दे सकता, उसके बदलेमें सारा अस्तन आपको नज़र है।

रानी—मैं आपका घोड़ा लेंगी।

ख़ासाहब—मैं उसके बराबर जवाहरान दे सकता हूँ, परन्तु घोड़ा नहीं दे सकता।

रानी—तो फिर इसका निश्चय तलवारसे होगा। बुन्देला योद्धाओंने तलवारों से लीं और निकट था कि दरबारकी भूमि रक्तसे प्लावित हो जाय बादशाह आलमगीरने बीचमें आकर कहा—रानी साहबा, आप सिपाहियोंको रोकें। घोड़ा आपको मिल जायगा, परन्तु इसका मूल्य बहुत देना पड़ेगा।

रानी—मैं उसके लिए अपना सर्वस्व देनेको तैयार हूँ।

बादशाह—जागीर और मन्सब भी ?

रानी—जागीर और मन्सब कोई चीज़ नहीं।

बादशाह—अपना राज्य भी ?

रानी—हाँ राज्य भी।

बादशाह—एक घोड़ेके लिए ?

रानी—नहीं, उस पदार्थके लिए जो ससारमें सबसे अधिक मूल्यवान् है।

बादशाह—वह क्या है ?

रानी—अपनी आन।

इस भौंति रानीने घोड़ेके लिए अपनी विस्तृत जागीर, उच्च राज-पद और राज-सम्मान सब हाथसे खोया और केवल इतना ही नहीं, भविष्यके लिए कौंटे बोये। इस घड़ीसे अन्त दशातक चम्पतरायको शान्ति न मिली।

६

राजा चम्पतरायने फिर ओरछेके किलेमें पदार्पण किया। उन्हें मन्सब और जागीरके हाथसे निकल जानेका अत्यन्त शोक हुआ, किन्तु उन्हें अपने मुँहसे शिकायतका एक शब्द भी नहीं निकाला। वे सारन्धाके स्वभाव माली भौंति जानते थे। शिकायत इस समय उसके आत्म-गौरवपर कुठार काम करती।

रानी—वह आपकी चीज़ नहीं, मेरी है। मैंने उसे रण-भूमिमें पाया है और उसपर मेरा अधिकार है। क्या रण-नीतिकी इतनी मोटी बात भी आप नहीं जानते ?

खॉसाहब—वह घोड़ा मैं नहीं दे सकता, उसके बदलेमें सारा अस्तबल आपको नज़र है।

रानी—मैं आपका घोड़ा लूंगी।

खॉसाहब—मैं उसके बराबर जवाहरान दे सकता हूँ, परन्तु घोड़ा नहीं दे सकता।

रानी—तो फिर इसका निश्चय तलवारसे होगा। बुन्देला योद्धाओंने तलवारें सौत लीं और निकट था कि दरबारकी भूमि रक्तसे प्लावित हो जाय बादशाह आलमगीरने बीचमें आकर कहा—रानी साहबा, आप सिपाहियोंको रोकें। घोड़ा आपको मिल जायगा; परन्तु इसका मूल्य बहुत देना पड़ेगा।

रानी—मैं उसके लिए अपना सर्वस्व देनेको तैयार हूँ।

बादशाह—जागीर और मन्सब भी ?

रानी—जागीर और मन्सब कोई चीज़ नहीं।

बादशाह—अपना राज्य भी ?

रानी—हाँ राज्य भी।

बादशाह—एक घोड़ेके लिए ?

रानी—नहीं, उस पदार्थके लिए जो ससारमें सबसे अधिक मूल्यवान् है।

बादशाह—वह क्या है ?

रानी—अपनी आन।

इस भाँति रानीने घोड़ेके लिए अपनी विस्तृत जागीर, उच्च राज-पद और राज-सम्मान सब हाथसे खोया और केवल इतना ही नहीं, भविष्यके लिए कँटे बोये। इस घड़ीसे अन्त दशतक चम्पतरायको शान्ति न मिली।

६

राजा चम्पतरायने फिर ओरछेके किलेमें पदार्पण किया। उन्हें मन्सब और जागीरके हाथसे निकल जानेका अत्यन्त शोक हुआ, किन्तु उन्होंने पने मुँहसे शिकायतका एक शब्द भी नहीं निकाला। वे सारन्धाके स्वभावकी भाँति जानते थे। शिकायत इस समय उसके आत्म-गौरवपर कुठारका करती।

देखा, तो आनन्दसे चेहरा खिल गया। लेकिन यह आनन्द क्षण-भर का था। हाय ! इस पुर्जेके लिए मैंने अपना प्रिय पुत्र हाथसे खो दिया है। कागजके टुकड़ेको इतने मँहँगे दामों किसने लिया होगा ?

मंदिरसे लौटकर सारन्धा राजा चम्पतरायके पास गई और बोनी, “प्राणनाथ, आपने जो वचन दिया था, उसे पूरा कीजिए।” राजने चौंक कर पूछा, “तुमने अपना वादा पूरा कर दिया ?” रानीने वा प्रतिज्ञापत्र राजाको दे दिया। चम्पतरायने उसे गौरवसे देखा, फिर बोने, “अब मैं चलेगा और ईश्वरने चाहा तो एक बेर फिर शत्रुओंकी खबर दूँगा। लेकिन सारन, सच बताओ इस पत्रके लिए क्या देना पड़ा ?”

रानीने कुण्ठित स्वरसे कहा—बहुत कुछ।

राजा—सुनूँ ?

रानी—एक जवान पुत्र।

राजाको वाण-सा लगा। पूछा—कौन ? अगदराय ?

रानी—नहीं।

राजा—रतनसाह ?

रानी—नहीं।

राजा—छत्रसाल ?

रानी—हाँ।

जैसे कोई पक्षी गोली खाकर परोको फड़फड़ाता है और तब बेदम होकर गिर पड़ता है, उसी भाँति चम्पतराय पलंगसे उछले और फिर अचेत होकर गिर पड़े। छत्रसाल उनका परम प्रिय पुत्र था। उनके भविष्यकी सारी कामनायें उसीपर अवलम्बित थीं। जब चेत हुआ तो धोले, “सारन, तुमने बुरा किया। अगर छत्रसाल मारा गया तो बुँदेला वंशका नाश हो जायगा।”

अँधेरी रात थी। रानी सारन्धा धोड़ेपर सवार चम्पतरायको पान्नीमें बैठाये फिलेके गुप्त मार्गसे निकली जाती थी। आजसे बहुत काल पहले एक दिन ऐसी ही अँधेरी, दुःखमयी रात्रि थी। तब सारन्धाने शीतलादेवीको कुछ कठोर वचन कहे थे। शीतलादेवीने उस समय जो भविष्यद्वाणी की थी वह आज पूरी हुई। क्या सारन्धाने उसका जो उत्तर दिया था वह भी पूरा होकर रहेगा ?

देखा, तो आनन्दसे चेहरा खिल गया। लेकिन यह आनन्द क्षण-भरका था। हाय ! इस पुर्जेके लिए मैंने अपना प्रिय पुत्र हाथसे खो दिया है। कागजके टुकड़ेको इतने मँहंगे दामों किसने लिया होगा ?

मंदिरसे लौटकर सारन्धा राजा चम्पतरायके पास गई और बोली, “प्राणनाथ, आपने जो वचन दिया था, उसे पूरा कीजिए।” राजाने चौंक कर पूछा, “तुमने अपना वादा पूरा कर दिया ?” रानीने वह प्रतिज्ञापत्र राजाको दे दिया। चम्पतरायने उसे गौरवसे देखा, फिर बोले, “अब मैं चलूँगा और ईश्वरने चाहा तो एक बेर फिर शत्रुओंकी खबर लूँगा। लेकिन सारन, सच बताओ इस पत्रके लिए क्या देना पड़ा ?”

रानीने कुण्ठित स्वरसे कहा—बहुत कुछ।

राजा—सुनूँ ?

रानी—एक जवान पुत्र।

राजाको वाण-सा लगा। पूछा—कौन ? अगदराय ?

रानी—नहीं।

राजा—रतनसाह ?

रानी—नहीं।

राजा—छत्रसाल ?

रानी—हाँ।

जैसे कोई पक्षी गोली खाकर परोको फड़फड़ाता है और तब बेदम होकर गिर पड़ता है, उसी भाँति चम्पतराय पलंगसे उछले और फिर अचेत होकर गिर पड़े। छत्रसाल उनका परम प्रिय पुत्र था। उनके भविष्यकी सारी कामनायें उसीपर अवलम्बित थीं। जब चेत हुआ तो बोले, “सारन, तुमने बुरा किया। अगर छत्रसाल मारा गया तो बुँदेला वंशका नाश हो जायगा।”

अँवेरी रात थी। रानी सारन्धा धोड़ेपर सवार चम्पतरायको पालकीमें बैठाये किलेके गुप्त मार्गसे निकली जानी थी। आजसे बहुत काल पहले एक दिन ऐसी ही अँवेरी, दुःखमयी रात्रि थी। तब सारन्धाने ग्रीतलादेवीको कुछ कठोर वचन कहे थे। ग्रीतलादेवीने उस समय जो भविष्यवाणी की थी वह आज पूरी हुई। क्या सारन्धाने उसका जो उत्तर दिया था वह भी पूरा होकर रहेगा ?

९

मय्याहू था। सूर्यनारायण सिरपर आकर अमिकी वर्षा कर रहे थे। शरीरको झुलसानेवाली प्रचण्ड, प्रखर वायु वन और पर्वतमें आग लगाती फिरती थी। ऐसा विदित होता था मानो अग्निदेवकी समस्त सेना गरजती हुई चली आ रही है। गगन-मण्डल इस भयसे काँप रहा था। रानी सारन्धा घोड़ेपर सवार, चम्पतरायको लिये, पश्चिमकी तरफ चली जाती थी। ओरछा दस कोस पीछे छूट चुका था और प्रतिक्षण यह अनुमान स्थिर होता जाता था कि अब हम भयके क्षेत्रसे बाहर निकल आये। राजा पालकीमें अचेत पड़े हुए थे और कहार पसीनेमें शराबोर थे। पालकीके पीछे पाँच सवार घोड़ा बढ़ाये चले आते थे, प्यासके मारे सबका बुरा हाल था। ताड़ सूखा जाता था। किसी वृक्षकी छाँह और कुएँकी तलाबमें आँखें चारों ओर दौड़ रही थीं।

अचानक सारन्धाने पीछेकी तरफ फिर कर देखा तो उन्ने सवारोंका एक दल आता हुआ दिखाई दिया। उसका माथा ठनका कि अब कुशल नहीं है। यह लोग अवश्य हमारे शत्रु हैं। फिर विचार हुआ कि शायद मेरे राजकुमार अपने आदमियोंको लिये हमारी सहायताको आ रहे हैं। नैराश्यमें भी आशा माथ नहीं छोड़ती। कई मिनट तक वह इसी आशा और भयकी अवस्थामें रही। यहाँ तक कि वह दल निकट आ गया और सिपाहियोंके वस्त्र साफ नजर आने लगे। रानीने एक ठण्डी साँस ली, उमका शरीर तृणवत् काँपने लगा। यह वादशाही सेनाके लोग थे।

सारधाने कहा—रोकी रोक लो। हुँदेल सिपाहियोंने भी तरवारें खींच लीं। राजाकी अवस्था बहुत शोचनीय थी, किन्तु जैसे दबी हुई आग हवा लगते ही प्रदीप्त हो जाती है, वही प्रकार इस संकटका शान होते ही उनके जर्जर शरीरमें वीरात्मा चमक उठी। वे पालकीका पर्दा उठाकर बाहर निकल आये। धनुष्य-बाण हाथमें ले लिया। किन्तु वह धनुष्य जो उनके हाथमें इन्द्रका वज्र बन जाता था, इस समय जरा भी न झुका। सिरमें चण्ड आगा, पैर धर्राये, और वे धरतीपर गिर पड़े। भावी अमंगलकी सूचना मिल गई। उस परस्परति पक्षीके सदृश जो साँपको अपनी तरफ आते देखकर ऊपरको उचकता और फिर गिर पड़ता है। राजा चम्पतराय फिर गँधकर उठे और फिर गिर पड़े। सारन्धाने उन्हें नंगालकर बैठायो, और रोंतर बोलनेकी चेष्टा की। परन्तु हुँदेल केवल इतना निम्न—

९

मध्याह्न था। सूर्यनारायण सिरपर आकर अग्निकी वर्षा कर रहे थे। शरीरको झुलसानेवाली प्रचण्ड, प्रखर वायु वन और पर्वतमें आग लगाती फिरती थी। ऐसा विदित होता था मानो अग्निदेवकी समस्त सेना गरजती हुई चली आ रही है। गगन-मण्डल इस भयसे काँप रहा था। रानी सारन्धा घोड़ेपर सवार, चम्पतरायको लिये, पश्चिमकी तरफ चली जाती थी। ओरछा दस कोस पीछे छूट चुका था और प्रतिक्षण यह अनुमान स्थिर होता जाता था कि अब हम भयके क्षेत्रमें बाहर निकल आये। राजा पालकीमें अचेत पड़े हुए थे और कहार पसीनेमें शराबोर थे। पालकीके पीछे पाँच सवार घोड़ा बढ़ाये चले आते थे, प्यासके मारे सबका बुरा हाल था। ताड़ सूखा जाता था। किसी वृक्षकी छोंह और कुँएकी तलाशमें आँखें चारों ओर दौड़ रही थीं।

अचानक सारन्धाने पीछेकी तरफ फिर कर देखा तो उसे सवारोंका एक दल आता हुआ दिखाई दिया। उसका माथा ठनका कि अब कुशल नहीं है। यह लोग अवश्य हमारे शत्रु हैं। फिर विचार हुआ कि गायद मेरे राजकुमार अपने आदमियोंको लिये हमारी सहायताको आ रहे हैं। नैराश्र्यमें भी आशा साथ नहीं छोड़ती। कई मिनट तक वह इसी आशा और भयकी अवस्थामें रही। यहाँ तक कि वह दल निकट आ गया और सिपाहियोंके वस्त्र साफ नज़र आने लगे। रानीने एक ठण्डी साँस ली, उसका शरीर तृणपत्र काँपने लगा। यह बादशाही मेनाफे लोग थे।

सारधाने पहारोंसे कहा—जोली रोक लो। धुँदला सिपाहियोंने भी तरवारें नीच लीं। राजाकी अवस्था बहुत गौचनीय थी, किन्तु जैसे दबी हुई आग हवा लगते ही प्रदीप्त हो जाती है, उसी प्रकार हम संकटका गान होते ही उनके जर्जर शरीरमें धीरात्मा चमक उठी। वे पालकीका पर्दा उठाकर बाहर निकल आये। धनुष्य-बाण हाथमें ले लिया। किन्तु वह धनुष्य जो उनके हाथमें हन्द्रका यज्ञ बन जाता था, इस समय जरा भी न झुका। सिरमें चपतर आया, पैर धराये, और वे धरतीपर गिर पड़े। भारी अगमलकी सूचना मिल गई। उस पग्वरहित पक्षीके गहज जो साँपको अपनी तरफ आते देग्गपर ऊपरको उचकता और फिर गिर पड़ता है। राजा चम्पतराय फिर मेमलहर उठे और फिर गिर पड़े। सारन्धाने उन्हें मेमालपर गेठाया, और गेठर घोलनेकी चेष्टा की। परन्तु मुँहरे फेज इतना निरुद्ध—

प्राणनाथ ! इसीने आगे उसके मुँहसे एक शब्द भी न निकल सका । आनन्द
मरनेवाली सारन्धा इस समय साधारण स्त्रियोंकी भाँति शक्तिहीन हो गई
किन्तु एक अग्र तक यह निर्वन्तता स्त्री जातिकी शोभा है ।

चम्पतराय बोले, “ सारन, देखो हमारा एक और वीर जमीनपर गिरा
 जोर ! जिस आपत्तिर यावज्जीवन उरता रहा उसने इस अग्निम समाय
 जा पंग । मेरी आँखोंके सामने ज़ु नुहारे कोमल शरीरमें हाथ लगाये
 ओर, मैं असह्य दिल भी न सँभला । हाथ ! मृत्यु, तू का आपसी ! ”
 यह कहन कहन ऊँट एक विचार आया । तत्परागि तर्क हाथ बड़ाया, मग
 पथमि दम न था । तन सम्भामे वो — प्रिये, तुमने कितने ही अपमगैम
 सरा आन निभाई है ।

[illegible]

ਸ੍ਰੀ ਮਾਤਾ, ਸ੍ਰੀ ਪਾਤਸ਼ਾਹੀ ਸ਼ਾਸਤਰੀ ਸ਼੍ਰੀ ਮਾਤਾ ਸ਼੍ਰੀ ਮਾਤਾ ਸ਼੍ਰੀ ਮਾਤਾ

• 1007 - 1608 - 1911 - 1912 - 1913

रानी—(कॉपकर) आपके कहनेकी देर है।

राजा—अपनी तलवार मेरी छातीमें चुभा दो।

रानीके हृदयपर वज्राघात-सा हो गया। बोली—जीवननाथ !—इसके आगे वह और कुछ न बोल सकी, आँखोंमें नैराश्य छा गया।

राजा—मैं बेदियाँ पहननेके लिए जीवित रहना नहीं चाहता।

रानी—मुझसे यह कैसे होगा ?

पाँचवाँ और अन्तिम सिपाही धरतीपर गिरा। राजाने झुंझलाकर कहा—
इसी जीवटपर आन निभानेका गर्व था ?

बादशाहके सिपाही राजाकी तरफ लपके। राजाने नैराश्यपूर्ण भावसे रानीकी ओर देखा। रानी क्षण-भर अनिश्चित रूपसे खड़ी रही। लेकिन सफ़टमें इमारी निश्चयात्मक शक्ति बलवान् हो जाती है। निकट था कि सिपाही लोग राजाको पकड़ लें कि सारन्धाने दामिनीकी भाँति लपककर अपनी तलवार राजाके हृदयमें चुभा दी।

प्रेमकी नाय प्रेमके सागरमें डूब गई। राजाके हृदयसे रुधिरकी धारा निकल रही थी, पर चेहरेपर शान्ति छाई हुई थी।

कैसा करुण हृदय है ! वह स्त्री जो अपने पतिपर प्राण देती थी, आज उसकी प्राणघातिका है ! जिस हृदयसे आलिङ्गित होकर उसने गौवन-सुरा खड़ा, जो हृदय उसकी अभिलाषाओंका केन्द्र था, जो हृदय उसने अभिमानका पोषक था, उसी हृदयको सारन्धाकी तलवार छेद रही है ! किस ग्रीक तलवारमे ऐसा काम हुआ है ?

आह ! आत्माभिमानका कैसा विषादमय अन्त है। उदयपुर और मारवाहके इतिहासमें भी आत्म-गौरवकी ऐसी घटनाएँ नहीं मिलती।

बादशाही सिपाही मारन्धाका यह साहस और धैर्य देखकर दग रत गये। सगदरने आगे बढ़कर कहा—रानी साहबा, खुदा गवाह है, हम सब आपके गुलाम हैं। आरका जो हुफ्त हो उसे व सरो चम्न बजा लायेंगे।

सारन्धाने कहा—अगर हमारे पुत्रोंमें कोई जीवित हो, तो वे दोनों लाशें उसे सोम देना।

यह कहकर उसने वही तलवार अपने हृदयमें चुभा ली। जब वह अचेत होकर धरतीपर गिरा तो उसका गिर राजा चम्पतरायकी छातीपर था।

२

झालावाड़में बड़ी धूम थी। राजकुमारी प्रभाका आज विवाह होगा। मन्दारसे चारात आएगी। मेहमानोंके सेवा-सम्मानकी तय्यारियाँ हो रही थीं। दूकानें सजी हुई थीं। नौवतखाने आमोदालापमें गूँजते थे। सड़कोंपर सुगन्धि छिड़की जाती थी। अट्टालिकायें पुष्प-न्यताओंमें शोभायमान थीं। पर जिसके लिए ये सब तय्यारियाँ हो रही थीं, वह अपनी बाटिकाके एक वृक्षके नीचे उदास बैठी हुई रो रही थी।

रनिवासमें डोमिनियों आनन्दोत्सवके गीत गा रही थीं। कहीं मुन्दरियोंके हाव-भाव थे, कहीं आभूषणोंकी चमक-दमक, कहीं हाम-परिहासकी चहार। नाइन बात-बातपर तेज होती थी। मालिन गर्वमें फूली न नमताती थी। धोविन आँखें दिखाती थी। कुम्हारिन मटकेके सदृश फून्ती हुई थी। मण्डपके नीचे पुरोहितजी बात-बातपर मुवर्ण-मुद्राओंके लिए ठुनकते थे। रानी सिरके बाल गोलें भूखी प्यासी चारों ओर दौड़ती थी। सबकी बीछारें सहती थी और अपने भाग्यको सराहती थी। दिल खोलकर हीरे-जवाहिर टुटा रही थी। आज प्रभाका विवाह है, बड़े भाग्यसे ऐसी बातें सुननेमें आती हैं। सबके सब अपनी अपनी धुनमें मग्न हैं। किसीको प्रभाकी फिक्र नहीं है, जो वृक्षके नीचे अफेन्दी बैठी रो रही है।

एक रमणीने आकर नाइनने कहा—बहुत बड़ बड़ घर बातें न कर, कुछ राजकुमारीका भी ध्यान है। चल उनके बाल गूँथ।

नाइनने हाँकी तले जीभ दवाई। दोनों प्रभाको ढूँढ़ती हुई बागमें पहुँचीं। प्रभाने उन्हें देखते ही आँख पीठ टांके। नाइन मोनियोंमें भोग भरने लगी और प्रभा सिर नीचा किये आँखोंमें मोती बरसाने लगी।

रमणीने सच-नेत्र होकर कहा—बहिन, दिल इतना छोटा मत करो। भूत-भौंसी सुगद पाकर इतनी उदास क्यों होती हो!

प्रभाने सहेलीकी ओर देगकर कहा—बहिन, न जाने क्यों दिल बँटा लगता है। मोतीने छेड़ कर कहा—सिप-सिप-सिप बेकली दे!

प्रभा उदासीन भावने बोली—क्यों मेरे मनमें बँटा दर रहा है सिप-सिप-सिप मुलायम न होती।

सहेली उसमें क्या साराङ्ग बोली—अरे उदासीन भावने बहुत खेद हो जाता है। उम्मी प्रभा नेगावके पहले प्रेमियोंका मन खपाने हो जाता है

प्रभा बोली—नहीं यहिन, यह बात नहीं। मुझे शकुन अच्छे नहीं दिखाई देते। आज दिन-भर मेरी आँख फटकती रही। रातको मैंने बुरे स्वप्न देखे हैं। मुझे शका होती है कि आज अवश्य कोई न कोई विघ्न पड़नेवाला है। तुम राणा भोजराजको जानती हो न ?

मन या हो गई। आकाशपर तारोंके दीपक जले। झालानाड़में बूढ़े-जवान सभी लोग बारातकी अगुवानीके लिए तैयार हुए। मरदोंने पागें सँवारी, शस्त्र मने। युवतियाँ श्रृंगार कर गार्ती-वजार्ती रनिवासकी ओर चलीं। हजारों गिर्वाँ जलपर नैटी बारातकी राह देण रही थीं।

अचानक शोर मचा कि बारात आ गई। लोग सँभल बैठे, नगाड़ोंपर जोर पड़ने लगी। मन्दाभियाँ दमने लगीं। जवानोंने धोंड़ोंको एक लगाई। एक क्षणमें साराई की एक सेना रात भवनके सामने आकर खड़ी हो गई। लोगोंका देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ, क्योंकि यह मन्दारकी बारात नहीं थी, बल्कि राणा भोजराजकी सेना थी।

अचानक सबी विस्मित खड़े हो गये, कुछ निश्चय न कर सके थे कि क्या करना चाहिये। उनमेंसे किशोदरालोंने राज-मानकी पर लिया। तब अचानक ही सब खड़े हुए। मैमन्तर नटारों की वली और आकाश पर भी एक पड़। राणा भोजराजमें तुम गया। रनिवासमें मन्दर बन गई।

रावसाहबको कई आदमियोंने पकड़ लिया था। वे तड़प कर बोले—प्रभा, न राजपूतकी कन्या है !

प्रभाकी आँखें सजल हो गईं। बोली—राणा भी तो राजपूतोंके कुल-तिलक हैं।

रावसाहबने आवेशमें आकर कहा—निर्लज्जा !

कटारके नीचे पड़ा हुआ बलिदानका पशु जैसी दान दृष्टिसे देखता है, उसी भाँति प्रभाने रावसाहबकी ओर देखकर कहा—जिस झालावाड़की गोदमें पली हूँ, क्या उसे रक्तसे रँगवा दूँ ?

रावसाहबने क्रोधसे कौंपकर कहा—क्षत्रियोंको रक्त इतना प्यारा नहीं होता। मर्यादापर प्राण देना उनका धर्म है।

तब प्रभाकी आँखें लाल हो गईं। चेहरा तमतमाने लगा।

बोली—राजपूत-कन्या अपने सतीत्वकी रक्षा आप कर सकती है। इसके लिए रुधिर-प्रवाहकी आवश्यकता नहीं।

पल-भरमें राणाने प्रभाको गोदमें उठा लिया। बिजलीकी भाँति क्षणद्वार बाहर निकले। उन्होंने उसे घोड़ेपर बिठाया, आप नवार हो गये और घोड़ेको उछा दिया। अन्य चित्तौड़ियोंने भी घोड़ोंकी बाँगे मोड़ दीं। उनके सौ जवान भूमिपर पड़े तड़प रहे थे, पर किसीने तलवार न उठाई थी।

रातको दस बजे मन्दारवाले भी पहुँचे। मगर यह शोक-समाचार पाते ही लौट गये। मन्दार-कुमार निराशाने अचेत हो गया। जैसे रातको नगीचा फिनारा मुनसान हो जाता है, उसी तरह मारा रात झालावाड़में मनाटा छाया रहा।

३

चित्तौड़के रंग-महलमें प्रभा उदास बैठी। सामनेके सुन्दर पीपोंकी पत्तियाँ गिर रही थीं। गन्धारा तमतमान था। रंगबिरंगे पक्षी वृक्षोंपर बैठे चरचरा कर रहे थे। इनमेंमें गानाने कमरेमें प्रवेश किया। प्रभा उठकर खड़ी हो गई।

राणा बोले—प्रभा, मैं तुम्हारा अपराधी हूँ। मैं शत्रुपूँज सुन्दर माता बितारती गोदमें लीन लगाना। पर यदि मैं तुमसे कहूँ कि यह सब तुम्हारे प्रेमसे बिगड़ा होकर मैंने किया, तो तुम मनमें हँसोगी और कहोगी कि यह निगल्ले, भगूले टंगरुई धीति है। पर वास्तवमें यही बात है। जल्दसे मैंने रणदौड़की रंग-महलमें तुमको देखा, तबसे एक क्षण भी ऐसा नहीं बीता कि

मैं तुम्हारी सुधियों निकल न रहा होऊँ । तुम्हें अपनाकरा अन्य कोई उपाय होगा, तो मैं कदापि इस पाशविक ढंगसे काम न लेता । मैंने रागादारी ग्राह्ये तारतार मन्देजे भेजे, पर उन्होंने हमेशा मेरी उपेक्षा की । अन्तमें जब तुम्हारे पिताजी अबधि आ गई और मैंने देखा कि एक ही दिनमें तुम दारे की प्रेम पानी हो जाओगी, और तुम्हारा ध्यान करना भी मेरी आत्मासे दण्डित करना, तो लाचार होकर मुझे यह अनीति करनी पड़ी । मैं मानता हूँ कि यह सच्चा सगी स्वाभाविकता है । मैंने अपने प्रेमके मामलेमें तुम्हारे मनोमल कोशिशें कुछ न समझा, पर प्रेम स्वयं एक बड़ी हुई स्वाधीनता है, जो अन्यायी अपने पितामह मियाय और कुछ नहीं मसता । मुझे पुरा विश्वास था कि मैं अपने निजी भाव और प्रेममें तुमको अपना लूँगा । परमा, स्वामये मर्यादा का मनोव्यवस्था किमी मध्य मुक्त अल दे, तो यह दण्डका भागी नहीं । मैं प्रेम का प्यासा हूँ । मीरा सगी मर्यादीणी है । उसका दृश्य प्रेम का स्वातन्त्र्य है । उसका एक तुम्हें भी मुझे उन्मत्त करनेके लिए काफी था । पर फिर यह सब इन्तहा राग हो रहा मर लिये स्थान कहाँ । तुम आपसे कहती कि यदि स्वयं मियाय प्रमत्त न हो सार या तो क्या मारे मजदूरीमें कि नही । निम्नस्तर का पानेका मुन्दराका प्रमाण नहीं है और न ही । यदि ही प्रमाण नही वाद हो । मीरा अनादरका प्रमाण हो मर कि है । मर इन्तहा । पर नही आप ही हो । उसका दाद तुम्हारे ही ऊपर है । मर्यादा का मर ही कि नही है, एक ही मर्यादा और एक ही प्रमाण । मर्यादा

अपने हृदयको खूब मजबूत और अपनी कटारको खूब तेज कर रखता था । उसने निश्चय कर लिया था कि इसका एक बार उनपर होगा, दूसरा अपने कलेजेपर और इस प्रकार यह पाप-काण्ड समाप्त हो जायगा । लेकिन राणाकी नम्रता, उनकी करुणात्मक विवेचना, और उनके विनीत भावने प्रभाको शान्त कर दिया । आग पानीसे बुझ जाती है । राणा कुछ देर वहाँ बैठे रहे, फिर उठकर चले गये ।

४

प्रभाको चित्तौड़में रहते दो महीने गुजर चुके हैं । राणा उसके पास फिर न आये । इस बीचमें उनके विचारोंमें बहुत कुछ अन्तर हो गया है । क्षालाबादपर आक्रमण होनेके पहले मीराबाईको इसकी विन्मूल खबर न थी । राणाने इस प्रस्तावको गुप्त रखवा था । किन्तु अब मीराबाई प्रायः उन्हें इस दुःसम्बन्धपर लज्जित किया करती है और धीरे धीरे राणाको भी विश्वास होने लगा है कि प्रभा इस तरह कार्यमें नहीं आ सकती । उन्होंने उसके सुत-विलासकी सामग्री एकत्र करनेमें कोई कसर नहीं रख छोड़ी थी । लेकिन प्रभा उनकी तरफ आँख उठाकर भी नहीं देखती । राणा प्रभाकी लौंड़ियोंमें नित्यका समाचार पूछा करते हैं और उन्हें रोज वही निराशापूर्ण वृत्तान्त सुनाई देता है । सुरसाई हुई कली किसी भौंति नहीं खिलती । अतएव उनकी कभी कभी अपने इस दुस्साहसपर पश्चात्ताप होता है । वे पछताते हैं कि मेने दयार्थ ही यह अन्याय किया । लेकिन फिर प्रभाका अनुपम सौन्दर्य नेगीके मामले आ जाता है और वह अपने मनकी इस विचारसे समझा लेते हैं कि एक सगर्वा मुन्दरीका प्रेम इतना जल्दी परिवर्तित नहीं हो सकता । निस्सन्देह मेरा मृदु व्यवहार कभी न कभी अपना प्रभाव दिखायगा ।

प्रभा सारे दिन अकेली बैठी पैठी उफतानी और रोहन्ती थी । उसके चिन्तनके निमित्त कई मानेवाली चिर्यां नियुक्त थी । किन्तु रागरामने उस शक्ति छो गई । वह प्रविष्टा चिन्ताओंमें डूबी रहती थी ।

राणाके नरक भाषणका प्रभाव अब निट नका था और उनकी अमानुषिक प्रतिपाद फिर अपने प्रभाके रूपमें दिखाई देने लगी थी । पापक-वस्तुता शान्तिदायक नहीं होती । वह केवल निरुत्तर कर देती है । प्रभाको अब अपने अनाक हो जानेपर आश्चर्य होता है । उसे राणाकी बातोंके ऊपर भी मानने

अपने हृदयको खूब मजबूत और अपनी कटारको खूब तेज कर रक्खा था। उसने निश्चय कर लिया था कि इसका एक बार उनपर होगा, दूसरा अपने कलेजेपर और इस प्रकार यह पाप-काण्ड समाप्त हो जायगा। लेकिन राणाकी नम्रता, उनकी करुणात्मक विवेचना, और उनके विनीत भावने प्रभाको शान्त कर दिया। आग पानीसे बुझ जाती है। राणा कुछ देर वहाँ बैठे रहे, फिर उठकर चले गये।

४

प्रभाको चित्तौदमें रहते दो महीने गुजर चुके हैं। राणा उसके पास फिर न आये। इस बीचमें उनके विचारोंमें बहुत कुछ अन्तर हो गया है। शालानाकपर आक्रमण होनेके पहले मीराबाईको इसकी विल्कुल खबर न थी। राणाने इस प्रस्तावको गुप्त रक्खा था। किन्तु अब मीराबाई प्रायः उन्हें इन ठुराप्रहपर लज्जित किया करती है और धीरे धीरे राणाको भी विश्वास होने लगा है कि प्रभा इस तरह कायूमें नहीं आ सकती। उन्होंने उसके सुर-विलासपी सामग्री एकत्र करनेमें कोई कसर नहीं रख छोड़ी थी। लेकिन प्रभा उनकी तरफ और उठानर भी नहीं देखती। राणा प्रभाकी लौहियोने नित्यका समाचार पूछा करते हैं और उन्हें रोज वही निराशापूर्ण वृत्तान्त सुनाई देता है। मुस्ताई हुई फली किसी भौंति नहीं मिलती। अतएव उनको कभी कभी अपने इस दुस्ताहसर पश्चात्ताप होता है। ये पछनते हैं कि मैंने व्यर्थ ही यह अन्याय किया। लेकिन फिर प्रभाका अनुपम सौन्दर्य नेषोंके सामने आ जाता है और वह अपने मनको इस विचारने समझा देने है कि एक सगाई सुन्दरीका प्रेम इतना जल्दी परिजर्जित नहीं हो सकता। निस्पन्दता मेरा बहुत व्यथार कभी न कभी अपना प्रभाव दिखानाया।

प्रभा गारे दिन अकेली बैठी बैठी उषतापी और धुसतानी थी। उसमें किनारेके निमित्त कई गानेवाली स्त्रियों निमुक्त थी। किन्तु रागरगने उगे अछिन हो गई। यह प्रतिजन विन्ताओंमें दूबी रहती थी।

राजाके नरत भाषणका प्रभाव अब निरुपुता था और उनकी अमानुषिक हृष्टि अब फिर अरुण यथाथे रूपमें दिखलाई देने लगी थी। साम्य-चतुर्ग्य दान्तिदारक नहीं होता। वह केवल निरुत्तर कर देती है। प्रभाको अब अपने अभाव हो जानेपर आश्रय होता है। उसे राजाकी स्तौति के उत्तर भी रहने

अबतक आनेके साहस न हुआ। इसका कारण यही दण्ड-भय था। तुम क्षत्राणी हो और क्षत्राणियों क्षमा करना नहीं जानतीं। झालाबादमें जब तुम मेरे साथ आनेपर स्वयं उद्यत हो गई, तो मैंने उसी क्षण तुम्हारे जोहर परख लिये। मुझे मालूम हो गया कि तुम्हारा हृदय बल और विश्वाससे भरा हुआ है और उसे काबूमें लाना सहज नहीं। तुम नहीं जानतीं कि यह एक मास मैंने किस तरह काटा है। तड़प तड़प कर मर रहा हूँ। पर जिस तरह गिकारी बफारी हुई सिंदिनीके सम्मुख जानेसे डरता है वही दगा मेरी थी। मैं कई बार आया, यहाँ तुमको उदास तिठारियों चढ़ाये बैठे देखा। मुझे अन्दर पैर रखनेका साहस न हुआ। मगर आज मैं बिना बुलाया मेहमान नहीं हूँ। तुमने मुझे बुलाया है और तुम्हें अपने मेहमानका स्वागत करना चाहिए। हृदयसे न सही—जहाँ अग्नि प्रज्ज्वलित हो वहाँ ठण्डक कहाँ?—बातोंहीसे सही, अपने भावोंको दवा कर ही सही, मेहमानका स्वागत करो। सत्कारमें शत्रुका आदर मित्रोंसे भी अधिक किया जाता है।

“प्रभा, एव क्षणके लिए क्रोधको शान्त करो और मेरे अपराधोंपर विचार करो। तुम मेरे ऊपर यही दोषागेषण कर सकती हो कि मैं तुम्हें माता-पिताकी गोदसे छीन लाया। तुम जानती हो, कृष्ण भगवान् कर्मिणीको लूट लाये थे। राजपूतोंमें यह कोई नई बात नहीं है। तुम कहोगी, इससे झालाबादवालोंका अपमान हुआ; पर ऐसा कहना कदारि ठीक नहीं। झालाबादवालोंने वही किया जो मदोंका धर्म था। उनका पुरुषार्थ देखकर हम चिन्तित हो गये। यदि वे कृतकार्य नहीं हुए तो यह उनका दोष नहीं है। नीगोरी सदैव जीत नहीं होती। हम इस लिए सन्नत हुए कि हमारी संख्या अधिक थी और हम कामके लिए तैयार होकर गये थे। वे निष्क्रिय थे, इस कारण उनकी हार हुई। यदि हम यहाँने शीम ही प्राप्त बचाकर भाग न आते तो हमारी गति यही होती जो राजगढ़ने कही थी। एक भी निस्सीढ़ी न बचता। लेकिन ईश्वरके लिए यह मत सोचो कि मैं अपने अपराधोंके दूषणको मिटाना चाहता हूँ। नहीं, मुझमें अवग्राह हुआ और मैं हृदयमें उमरत लज्जित हूँ। पर अब तो जो कुछ होना था हो चुका। अब इस विषये कुछ रत्नको मैं तुम्हारे ऊपर छोड़ता हूँ। यदि मुझे तुम्हारे हृदयमें कोई स्थान मिले तो मैं उसे स्वयं समझूँगा। इन्होंने तुम्हें निज्जोरा मद्राग भी बहुत है। क्या यह सम्भव है?”

अबतक आनेके साहस न हुआ। इसका कारण यही दण्ड-भय था। तुम क्षत्राणी हो और क्षत्राणियाँ क्षमा करना नहीं जानतीं। शालावाड़में जब तुम मेरे साथ आनेपर स्वयं उद्यत हो गई, तो मैंने उसी क्षण तुम्हारे जीहर परस लिये। मुझे मात्तम हो गया कि तुम्हारा हृदय बल और विश्वाससे भरा हुआ है और उसे कायूमें लाना सहज नहीं। तुम नहीं जानतीं कि यह एक माम मैंने किस तरह काटा है। तड़प तड़प कर मर रहा हूँ। पर जिस तरह शिकारी बफरी हुई सिंहिनीके सम्मुख जानेसे डरता है वही दशा मेरी थी। मैं कई बार आया, यहाँ तुमको उदास तिउरियाँ चढाये बैठे देखा। मुझे अन्दर पैर रखनेका साहस न हुआ। मगर आज मैं बिना बुलाया मेहमान नहीं हूँ। तुमने मुझे बुलाया है और तुम्हें अपने मेहमानका स्वागत करना चाहिए। हृदयसे न सही—जहाँ अग्नि प्रज्ज्वलित हो वहाँ ठण्डक कहाँ?—पातोहीसे सही, अपने भावोंको दया कर ही सही, मेहमानका स्वागत करो। ससारमें शत्रुका आदर मित्रोंसे भी अधिक किया जाता है।

“प्रभा, एक दणके लिए क्रोधको शान्त करो और मेरे अपराधोंपर विचार करो। तुम मेरे ऊपर यही दोषारोपण कर सकती हो कि मैं तुम्हें माता-पिताकी गोदसे छीन लाया। तुम जानती हो, कृष्ण भगवान् कृपिमगीको हर लाये थे। रामपूतोंमें यह कोई नई बात नहीं है। तुम कहोगी, इसने शालावाड़वालोंका अपमान हुआ; पर ऐसा कहना कदापि ठीक नहीं। शालावाड़वालोंने वही किया जो मदोंरा धर्म था। उनका पुरुषार्थ देखकर हम चकित हो गये। यदि वे कृतकार्य नहीं हुए तो यह उनका दोष नहीं है। बीरोंकी सदैव जीत नहीं होती। हम इस लिए सफल हुए कि हमारी भक्त्या अधिक थी और इस कामके लिए तैयार होकर गये थे। ये निश्चय थे, इस कारण उनकी हार हुई। यदि हम वहाँसे जीम ही प्राण बचाकर भाग न आते तो हमारी गति वही होती जो रावसाहबने कही थी। एक भी चिन्नीड़ी न बचता। लेकिन ईश्वरके लिए यह मत मानो कि मैं अपने अपराधके दण्डको मिटाना चाहता हूँ। नहीं, मुझमें अग्राह हुआ जोरमें हृदयसे उग्यर लजित हूँ। पर अब तो जो कुछ होना था हो चुका। अब हम विमर्श हुए संजो मैं तुम्हारे ऊपर छोड़ता हूँ। यदि मुझे तुम्हारे हृदयमें कोई स्थान मिले तो मैं उसे स्वर्ग समझूँगा। दूबते हुएकी निन्दना मरणा भी बहुत है। क्या यह सम्भव है?”

प्रभा बोली—नहीं ।

राणा—झाड़वाड़ जाना चाहती हो ?

प्रभा—नहीं ।

राणा—मन्दारके राजकुमारके पास भेज दूँ ?

प्रभा—कदापि नहीं ।

राणा—लेकिन मुझसे यह तुम्हारा कुदना देना नहीं जाता ।

प्रभा—आप इस कण्ठ जीघ ही मुक्त हो जायेंगे ।

राणानि भयभीत दृष्टि देकर कहा “ जैसी तुम्हारी इच्छा ” और “
रक्षक उठकर चले गए ।

मीरा—पर मेरी विनय आपको माननी पड़ेगी ।

साधु—मैं तुम्हारी आज्ञा पालन करूँगा, तो तुमको भी मेरी एक बात माननी होगी ।

मीरा—कहिण, क्या आज्ञा है ?

साधु—माननी पड़ेगी ।

मीरा—मानूँगी ।

साधु—वचन देती हूँ, आप प्रसाद पायें ।

मीराबाईने समझा था कि साधु कोई मन्दिर बनवाने या कोई यज्ञ पूर्ण करा देनेकी याचना करेगा । ऐसी बातें नित्य-प्रति हुआ ही करती थीं और मीराका सर्वस्व साधु-नेवाके लिए अर्पित था । परन्तु उसके लिए साधुने ऐसी कोई याचना न की । वह मीराके कानोंके पास मुँह रें जाकर बोला—आज दो घण्टेके बाद राज-भवनका चोर दरवाजा खोल देना ।

मीरा विस्मित होकर बोली—आप कौन हैं ?

साधु—मन्दारका राजकुमार ।

मीराने राजकुमारको सिरसे पाँव तक देखा । नेत्रोंमें आदरकी जगह घृणा थी । कहा—राजपूत यों छल नहीं करते ।

राजकुमार—यह नियम उस अवस्थाके लिए है जब दोनों पक्ष समान शक्ति रखते हों ।

मीरा—ऐसा नहीं हो सकता ।

राजकुमार—आपने वचन दिया है, उसे पालन करना होगा ।

मीरा—महाराजकी आज्ञाके सामने मेरे वचनका कोई महत्त्व नहीं ।

राजकुमार—मैं यह कुछ नहीं जानता । यदि आपको अपने वचनकी कुछ भी मर्यादा है तो उसे पूरा कीजिए ।

मीरा—(सोचकर) महारामे जाकर क्या कहोगे ?

राजकुमार—नहीं जानते दो दो जाने ।

मीरा विन्तामें डिग्न हो गई । एक लम्ब साप्ताहिक कड़ी आज्ञा भी पीर-पूरती तब अपना वचन और उमर पालन करनेका परिणाम । विन्ता ही पीरात्मिक भवनामें उसके सामने आ रही थी । दशरथने वचन पालनेके लिए अपने शिष्य दूधको वन गम दे दिया । मैं वचन दे चुकी हूँ । उसे पूरा करना मेरा परम धर्म है । मैंने पतिरानी आज्ञाको बेमेल तोड़ा । यदि उनकी आज्ञाके

मान तोड़ दें। आप मेरे ऊपर जो कृपादृष्टि रखते हैं, उसीके भरोसे मैंने वचन दिया। अब मुझे इस फन्देसे उबारना आपहीका काम है।

राणा कुछ देर सोचकर बोले—तुमने वचन दिया है उसका पालन करना मेरा कर्तव्य है। तुम देवी हो, तुम्हारे वचन नहीं टल सकते। द्वार गोल दो। लेकिन यह उचित नहीं है कि वह प्रभासे अकेले मुलाकात करे। तुम स्वयं उसके साथ जाना। मेरी स्तातिरसे इतना कष्ट उठाना। मुझे भय है कि वह उसकी जान लेनेका इरादा करके न आया हो। ईर्ष्यामें मनुष्य अन्धा हो जाता है। चार्लीजी, मैं अपने हृदयकी बात तुमसे कहना हूँ। मुझे प्रभाकी हर लानेका अत्यन्त शोक है। मैंने समझा था कि यहाँ रहते रहते वह हिल-मिल जायगी, किन्तु यह अनुमान गलत निकला। मुझे भय है कि यदि उसे कुछ दिन यहाँ और रहना पड़ा तो वह जीती न बचेगी। मुझपर एक अवलाकी हत्याका अपराध लग जायगा। मैंने उससे शालावाड़ जानेके लिए कहा, पर वह राजी न हुई। आज तुम उन दोनोंकी बातें सुनो। अगर वह मन्दार-कुमारके साथ जानेपर राजी हो, तो मैं प्रसन्नतापूर्वक अनुमति दे दूँगा। मुझसे कुछना नहीं देगा जाता। रूम्पर हम सुन्दरीका दृश्य मेरी ओर फेर देता तो मेरा जीवन सफल हो जाता। किन्तु जब यह सुन भाग्यमें लिगा ही नहीं है, तो क्या वश है। मैंने तुमसे ये बातें कही, इसके लिए मुझे क्षमा करना। तुम्हारे पतिव्रत हृदयमें ऐसे विचारोंके लिए स्थान कहाँ ?

मींगने आकाशकी ओर सङ्कोचमे देखकर कहा—तो मुझे आशा है ! मैं चोर-प्राप्त होऊँ ?

राणा—तुम हम परकी दत्तामिनी हो, मुझसे पूछनेकी जरूरत नहीं।

मींगबाई राणाकी प्रणाम करके चली गई।

७

आधी रात थीत सुरी थी। प्रभा चुपचाप बैठी दीपिका की ओर देग रही थी और सोचती थी, इसके एलनेमे प्रकाश होगा है; यह सही अगर जल्दी है तो दूरनेकी लाभ पहुँचाती है। मेरे जल्नेमे किसीको क्या लाभ है ? क्यों मुँह ? मेरे नीनेकी क्या जरूरत है ?

उसने फिर निद्राकी निद्रा निद्राकर आकाशकी तरफ देखा। काले पदम उज्ज्वल लगे स्थानगा रहे थे। प्रभासे सोचा, मेरे अन्धकारमय भाग्यमें ये दीपिमान सारे कहाँ हैं ? मेरे लिए जीवनके सुप्त कहाँ है ? क्या मेरे

८

प्रभा उसे देरते ही चौक पड़ी। उसने कटारको छिपा लिया। राजकुमारको देखकर उसे आनन्दकी जगह रोमाञ्चकारी भय उत्पन्न हुआ। यदि किसीको जरा भी सन्देह हो गया तो इनका प्राण बचना कठिन है। इनको तुरन्त यहाँसे निकल जाना चाहिए। यदि इन्हें वाते करनेका अवसर दूँ तो विलम्ब होगा और फिर ये अवश्य ही फँस जायेंगे। राणा इन्हें कदापि न छोड़ेंगे। ये विचार, वायु और बिजलीकी व्यग्रताके साथ, उसके मस्तिष्कमें दौड़े। वह तीव्र स्वरसे बोली—भीतर मत आओ।

राजकुमारने पूछा—मुझे पहचाना नहीं ?

प्रभा—रूप पहचान लिया, किन्तु यह बातें करनेका समय नहीं है। राणा तुम्हारी भातें हैं। अभी यहाँसे चले जाओ।

राजकुमारने एक पग और आगे बढ़ाया और निर्भीकतासे कहा—प्रभा, तुम मुझसे निष्ठुरता करती हो।

प्रभाने धमकाकर कहा—तुम यहाँ ठहरोगे तो मैं शोर मचा दूँगी।

राजकुमारने उद्दण्डतासे उत्तर दिया—इसका मुझे भय नहीं। मैं अपना जान हमेलीपर स्मर जाया हूँ। आज दोनोंमेंसे एकका अन्त हो जायगा। या तो राणा रहेंगे या मैं रहूँगा। तुम मेरे साथ चलोगी ?

प्रभाने दृढ़तासे कहा—नहीं।

राजकुमार व्यंग भावसे बोला—गर्ब, क्या चित्तौड़का जल-वायु पसन्द आ गया ?

प्रभाने राजकुमारकी ओर निरस्तुन नेत्रोंसे देखाकर कहा—संसारमें अपनी राय आनाथ पूरी नहीं होती। जिस तरह यहाँ मैं अपना जीवन याद रही हूँ वह मैं ही जानती हूँ। किन्तु लोक-मिन्दा भी गो कोरे चीज़ है। समाजकी दृष्टिमें मैं चित्तौड़की रानी हो चुकी। अब राणा जिस मौनि स्वयं उसी मौनि रहूँगी। मैं अन्य समयतक उनसे धृता करूँगी, न दूँगी, बुद्धिगी। जब जलन न मही जायगी, जिस खा लेंगी या छातीमें कटार मानकर भर जाऊँगी। लेकिन इसी मतमें। इन घरमें याद न जायेंगे और न रहेंगी।

राजकुमारके मनमें स्फोट हुआ कि प्रभाके गणनायकत्वका अन्त था। यह मुझसे राज कर रही है। प्रभाने जल-वायु में न रहेंगे। यह भावने बोला—और यदि मैं यहाँ रहूँगा उदात्त न जाऊँ। प्रभाने हीन

अकस्मात् राणा तलवार लिये वेगके साथ कमरेमें दाखिल हुए। राज-कुमार सँभलकर खड़ा हो गया।

राणाने सिंहके समान गरज कर कहा—दूर हट। क्षत्रिय न्रियोंपर हाथ नहीं उठाते।

राजकुमारने तनकर उत्तर दिया—लज्जाहीन न्रियोंकी यही सज़ा है।

राणाने कहा—तुम्हारा वैरी तो मैं था। मेरे सामने आते क्यों लजाते थे? जरा मैं भी तुम्हारी तलवारकी काट देखता।

राजकुमारने ऐंठकर राणापर तलवार चलाई। शस्त्र-विद्यामें राणा अनि कुशल थे। थार साली देकर राजकुमारपर झपटे। इतनेमें प्रभा जो मूर्च्छित अवस्थामें दीवारसे निमटी खड़ी थी, विजलीकी तरह कौंध कर राजकुमारके सामने खड़ी हो गई। राणा बार बार चुके थे। तलवारका पूरा हाथ उसके कन्धेपर पड़ा। रक्तकी फुहार छूटने लगी। राणाने एक ठण्डी साँस ली और उन्होंने तलवार हाथसे रौंच कर गिरती हुई प्रभाको सँभाल लिया।

क्षणमात्रमें प्रभाका मुखमण्डल वर्णहीन हो गया। आँखें ब्रुन गईं। दीपक ठण्डा हो गया। मन्दार-कुमारने भी तलवार फेंक दी और वह आँखोंमें आँसू-भर प्रभाके सामने घुटने टेककर बैठ गया। दोनों प्रेमियोंकी आँखें सजल थीं। पतिगे तुझे हुए दीपकपर जान दे रहे थे।

प्रेमके रहस्य निराटे हैं। अभी एक क्षण हुए राजकुमार प्रभापर तलवार लेकर झपटा था। प्रभा किसी प्रकार उसके माथ चलनेपर उद्यत न होती थी। लज्जाका भय, धर्मकी बेड़ी, कर्तव्यकी दीवार, रास्ता रोके गड़ी थी। परन्तु उसे तलवारके सामने देखकर उसने उमपर अपना प्राण अर्पण कर दिया। प्रीतिकी प्रथा निबाह दी। जेतिन अपने वचनके अनुसार उसी घरमें।

हाँ, प्रेमके रहस्य निराटे हैं। अभी एक क्षण पहले राजकुमार प्रभापर तलवार लेकर झपटा था। उसके गूँनवा प्यासा था। ईर्ष्याही अग्नि उसके हृदनमें दहक रही थी। वह अधिरुही भाराने शान्त हो गई। कुछ देर तक वह अचेत बैठा रोगा रहा। फिर उठा और उसने तलवार उठाकर जोरसे अपनी छातीमें चुभा ली। फिर रक्तकी फुहार निकली। दोनों प्राणयों मिल गई और उनमें कोई भेद न रहा।

प्रभा उसके साथ चलनेपर खड़ी न थी। किन्तु वह प्रेमके बन्धनको टोड़ न टपी। दोनों उस धरतीने नहीं, सृष्टारने एक साथ सिधारे।

दिखाई दी। इसकी उम्र २५ सालसे अधिक न थी, पर रंग पीला था। आँखें बड़ी और ओठ सूते। चान्द-ढालमें कोमलता थी और उसके डीलडौलका गठन बहुत ही मनोहर था। अनुमानसे जान पड़ता था कि समयने इसकी यह दशा कर रखी है पर एक समय वह भी होगा जब यह बड़ी सुन्दर होगी। इस लीने आकर चौखट चूमी और आशीर्वाद देकर पक्षपर बैठ गई। राजनन्दिनीने इसे सिरसे पैर तक गड़े ध्यानसे देखा और पूछा, “तुम्हारा नाम क्या है?”

उसने उत्तर दिया, “मुझे मज्जविलासिनी कहते हैं।”

“कहाँ रहती हो?”

“यहाँसे तीन दिनकी राहपर एक गाँव विक्रमनगर है, वहाँ मेरा घर है।”

“संस्कृत कहाँ पढ़ी है?”

“मेरे पिताजी संस्कृतके बड़े पण्डित थे, उन्हींने थोड़ी बहुत पढ़ा दी है।”

“तुम्हारा ब्याह तो हो गया है न?”

ब्याहका नाम सुनते ही मज्जविलासिनीकी आँखोंसे आँसू गहने लगे। वह आवाज सम्भाल कर बोली—इसका जवाब मैं फिर कभी दूँगी; मेरी रामकहानी बड़ी दुःखमय है। उसे सुनकर आपको दुःख होगा, इसलिए इस समय क्षमा कीजिए।

आजमे मज्जविलासिनी नहीं रहने लगी। संस्कृत साहित्यमें उसका बहुत प्रवेश था। वह राजकुमारियोंको प्रतिदिन रोचक कविता पढ़कर सुनाती थी। उसके रंग, रूप और बिसाने धीरे धीरे राजकुमारियोंके मनमें उसके प्रति प्रेम और प्रतिष्ठा उत्पन्न कर दी। यहाँ तक कि राजकुमारियों और मज्जविलासिनीके बीच बर्बाई-बुढाई उठ गई और वे सहेलियोंकी भाँति रहने लगीं।

२

कई महीने बीत गये। हूँसर धृष्टासिंह और धर्मसिंह दोनों महाराजके साथ जलमग्निलानकी मुहीमपर गये हुए थे। यह विद्वकी पदियों मेंपूत और शयनशके पदोंमें कटी। मज्जविलासिनीको दारिद्र्यालकी कठिनाई बहुत प्रेम था और यह उनके कान्धोंकी व्याख्या ऐसी उत्तमतामें करती और उनमें ऐसी मारीश्री निगलती कि दोनों राजकुमारियों को रो हो जाते।

एक दिन मज्जविलासिनीने कहा, दोनो राजकुमारियों कान्धोंमें ऐसी कठिनाई भई, तो देना कि, मज्जविलासिनी ही ही मातृपर पेटों दुर्द है और उनकी

उन्होंने वरसों संस्कृत साहित्य पढ़ा था। युद्ध-विद्यामें वे बड़े निपुण थे और कई बार लड़ाइयोंपर गये थे।

“ एक दिन गोधून्डि-वेलामें सब गायें जंगलसे लौट रही थीं। मैं अपने द्वारपर खड़ी थी। इतनेमें एक जवान बाँकी पगड़ी बाँधे, हथियार सजाये, ज़ुमता आता दिखाई दिया। मेरी प्यारी मोहिनी इस समय जंगलसे लौटी थी, और उसका बच्चा इधर कलेलें कर रहा था। सयोगवश बच्चा उस नरजवानसे टकरा गया। गाय उस आदमीपर झपटी। राजपूत बड़ा साहसी था। उसने गायद सोचा कि भागता हूँ तो कलङ्कटा टीका लगता है, तुरत तलवार ध्यानसे खींच ली और वह गायपर झपटा। गाय क्षणार्ध ही में लौटी थी, कुछ भी न डरी। मेरी आँखोंके सामने उस राजपूतने उस प्यारी गायको जानसे मार डाला। देरते देरते मैकड़ों आदमी जमा हो गये और उसको टेढ़ी-सीधी सुनाने लगे। इतनेमें पिताजी भी आ गये। वे सन्ध्या करने गये थे। उन्होंने आकर देखा कि द्वारपर सैकड़ों आदमियोंकी भीड़ लगी है, गाय तड़प रही है और उसका बच्चा खड़ा हो रहा है। पिताजीकी आहट सुनते ही गाय कराहने लगी और उनकी ओर उसने कुछ ऐसी दृष्टिसे देखा कि उन्हें क्रोध आ गया। मेरे बाद उन्हें यह गाय ही प्यारी थी। वे लफ्कार कर बोले—मेरी गाय किसने मारी है? नरजवान लजासे सिर उठाये सामने आया और बोला—मैंने।

पिताजी—तुम धत्रिय हो ?

राजपूत—हाँ।

पिताजी—तो किसी धत्रियसे हाथ मिलाते ?

राजपूतका चेहरा तमनमा गया। बोला—कोई धत्रिय सामने आ जाय। हजारों आदमी खड़े थे, पर किसीका साहस न हुआ कि उस राजपूतका सामना करे। यह देखकर पिताजीने तलवार खींच ली और वे उसपर दृढ़ पड़े। उसने भी तलवार निकाल ली और दोनों आदमियोंने तलवारें चालने लगीं। पिताजी बड़े बड़े, सीनेपर ज़रम गहरा लगा। गिर पड़े। उन्हें उठाकर लोग घरपर लाये। उनका चेहरा पीला था, पर उनकी आँखोंने चिनगाएँ निकल रही थीं। मैं खड़ी हुई उनके सामने आई। मुझे देखते ही उन्होंने सब आदमियोंको परोंसे हट जानेका संकेत किया। जब मैं और पिताजी-अपने-तरे रह गये, तो बोले—बेटी, तुम राजपूतानी हो ?

आपकी सेवामें आ पहुँची और तबसे आपकी कृपासे मैं आरामसे जीवन बिता रही हूँ। यही मेरी रामकहानी है।"

राजनन्दिनीने लम्बी साँस लेकर कहा, दुनियामें कैसे कैसे लोग भरे हुए हैं। ऐस तुम्हारी तलवारने उसका काम तो तमाम कर दिया ?

प्रजविलासिनी—कहाँ बहिन ! वह बच गया, जराम ओछा पड़ा था। उम्मी शकलके एक नौजवान राजपूतको मैंने जंगलमें शिकार खेलते देखा था। नहीं मालूम, वही था या और कोई, शकल बिलकुल मिलती थी।

३

कई महीने बीत गये। राजकुमारियोंने जयसे प्रजविलासिनीकी रामकहानी सुनी है, उसके साथ वे और भी प्रेम और सहानुभूतिका बर्तान करने लगी हैं। पहले बिना सकोच कभी कभी छेड़छाड़ हो जाती थी; पर अब दोनों दरदम उसका दिल बहलाया करती हैं। एक दिन बादल धिरे हुए थे; राजनन्दिनीने कहा—आज बिहारोलालकी 'मतमर्द' मुननेको जी चारना है। चर्पा नरुपर उसमें बहुत अच्छे दोड़े हैं।

दुर्गाकुँवरि—बड़ी अनमोल पुस्तक है। गखी, तुम्हारी बगलमें जो आलमारी रखी है, उसीमें यह पुस्तक है, जरा निकालना। प्रजविलासिनीने पुस्तक उतारी, और उसका पहला ही पृष्ठ खोला था कि, उसके हाथसे पुस्तक नुट कर गिर पड़ी। उसके पहले पृष्ठपर एक तस्वीर लगी हुई थी। वह उसी निर्दय युवककी तस्वीर थी जो उसके यापका हत्याग था। प्रजविलासिनीकी आँखें लाल हो गईं। त्योंपर बल पड़ गये। अपनी प्रतिभा याद आ गई। पर उसके माथ ही वह विचार उभरा हुआ कि इस आदमीका गिर यहाँ कैसे आया और इम्कान इन राजकुमारियोँके क्या सम्भव है। कहीं ऐसा न हो कि इन्होंने इनका हत्याग होकर अपनी प्रतिभा तोड़नी पड़े। राजनन्दिनीने उसकी सूझ देखकर कहा—गखी क्या बात है ? यह प्रोध क्यों ? प्रजविलासिनीने भावधानीने कहा—कुल नहीं, न जाने क्यों खबर आ गया था।

आजने प्रजविलासिनीके मनमें एक और विन्ना उत्पन्न हुई—परा दुष्टे राजकुमारियोँका हत्याग होकर अपना प्राण तोड़ना पड़ेगा ?

पूरे मोह में रहनेके बाद अबलानिमग्नने सुभीमिह और धर्ममिह लीटे। बादशाहकी सेनायो बड़ी बड़ी इन्तिहाइयोँका सामना करना पड़ा। बर्फ उधिरापास बरने लगी। पराकोँके दूर बर्दने एक गये। आगे जानेके

प्रसन्नतासे ले लिया। कविता यद्यपि उतनी बड़िया न थी, पर वह नई और वीरतासे भरी हुई थी। वे वीररसके प्रेमी थे, उसको पढ़कर बहुत खुश हुए और उन्होंने मोतियोंका एक हार उपहार दिया।

ब्रजविलासिनी यहाँसे छुट्टी पाकर कुँवर धर्मसिंहके पास पहुँची। वे बैठे हुए राजनन्दिनीकी लड़ाईकी घटनायें सुना रहे थे, पर ज्यों ही ब्रजविलासिनीकी आँख उनपर पड़ी, वह सन्न होकर पीछे हट गई। उसको देखकर धर्मसिंहके चेहरेका भी रंग उड़ गया, होठ सूख गये और हाथ-पैर सनसनाये लगे। ब्रजविलासिनी तो उलटे पाँव लौटो, पर धर्मसिंहने चारपाईपर लेटकर दोनों हाथोंमें मुँह ढँक लिया। राजनन्दिनीने यह दृश्य देखा और उसका फूल-सा बदन पसीनेसे तर हो गया। धर्मसिंह साते दिन पलगपर चुपचाप पड़े, कम्बुएँ बदलते रहे। उनका चेहरा ऐसा कुम्हला गया जैसे वे बरसोंके गेगी हो। राजनन्दिनी उनकी सेवामें लगी हुई थी। दिन तो यों कटा, रातको सुनार माहव सन्ध्याहीमें थकावटका बराना करके लेट गये। राजनन्दिनी ऐसा ही कि मानता क्या है। ब्रजविलासिनी इन्तीके मृतकी प्यारी है ? क्या यह सम्भव है कि मेरा प्याग, मेरा मुकुट धर्मसिंह ऐसा कटोरा हो ? नहीं, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। यह यद्यपि चाहती है कि अपने भाँति उनको मनसा बोल हल्का करे, पर नहीं कर सकती। अन्तर्गतों ने उसको अपनी गोशमें ले लिया।

४

राग वस्तु चीन गई है। आकाशमें अँधेरा छा गया है। सागरमें दुःगमे भरी हुई गौरी कभी रानी सुनाई दे जाती है और वह रहकर बिल्वेके मूल-द्वियोंमें आराधन करने आ पड़ती है। राजनन्दिनीकी आँख पलायक मुन्नी, जो उगने धर्मसिंहको पड़ेगा न पाया। दिल्ता हुई, यह शब्द उठकर ब्रजविलासिनीके कमरेकी ओर चली और दरवाजे पर पड़ी होकर भीतरकी ओर देखने लगी। सदेह पूरा हो गया। क्या घेनती है कि ब्रजविलासिनी हाथमें तेगा लिये पड़ी है और धर्मसिंह दोनों हाथ जोरे उसके सामने दोनों सन्देह दूरने देके बैठे हैं। यह दृश्य देखते ही राजनन्दिनीका मृत मृत गया और उसके स्तिमें नवज ज्ञाने लगा, ये सदा रहने लगे। जान पड़ता था कि मिरा लगी है। वह अपने लम्बेमें जाई और दूर दँकन लेट रही, पर उसकी आँखोंने एक पृष्ठ भी न निकली।

“क्यों ? क्या मैं सिपाही नहीं हूँ ? एक बार जो प्रतिज्ञा की, समझ लो कि वह पूरी करूँगा, चाहे इसमें अपनी जान ही क्यों न चली जाय ।”

“सब अवस्थाओंमें ।”

“हाँ, सब अवस्थाओंमें ।”

“यदि वह तुम्हारा कोई बन्धु हो तो ?”

पृथ्वीसिंहने धर्मसिंहको विचारपूर्वक देखकर कहा—कोई बंधु हो तो ?—

धर्मसिंह—हाँ, सम्भव है कि तुम्हारा कोई नातेदार हो ।

पृथ्वीसिंहने—(जोशमें) कोई हो, यदि मेरा भाई भी हो, तो भी जीता चुनवा दूँ ।

धर्मसिंह घोड़ेसे उतर पड़े । उनका चेहरा उतरा हुआ था और ओठ काँप रहे थे । उन्होंने कमरसे तेगा खोलकर ज़मीनपर रख दिया और पृथ्वीसिंहको ललकार कर कहा—पृथ्वीसिंह तैयार हो जाओ । वट टुट मिल गया । पृथ्वीसिंहने, चौंककर इधर उधर देखा तो धर्मसिंहके सिवाय और कोई दिखाई न दिया ।

धर्मसिंह—तेगा लींचो ।

पृथ्वीसिंह—मैंने उसे नहीं देखा ।

धर्मसिंह—वह तुम्हारे सामने खड़ा है । वह टुट कुफर्मी धर्मसिंह ही है ।

पृथ्वीसिंह—(घबराकर) ऐं तुम !—मै—

धर्मसिंह—राजपूत, अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो ।

इतना सुनते ही पृथ्वीसिंहने पिजलीकी तरह कमरने तेगा लींच लिया और उसे धर्मसिंहके सीनेमें चुभा दिया । मूठटक तेगा चुभ गया । रक्त का पल्लारा बह निकला । धर्मसिंह जमीनपर गिरकर धीमेसे बोले,—पृथ्वीसिंह, मैं तुम्हारा बहुत कृतज्ञ हूँ । तुम मर्चे वीर हो । तुमने पुरुषका बर्तन पुरुषकी भाँति पहना लिया ।

पृथ्वीसिंह वह सुनकर जमीनपर बैठ गये और रोने लगे ।

५

आज राजनन्दिनी सती होने जा रही है । अपने मोहरी दुन्दुभार भिये है और बाँग मोहियोंने भरवाई है । बगईमें खोजागया खन है, पैरोंमें गदावर लगाया है और सात सुनरी ओरी है । उल्लेखाने सुगन्धि टक रही है, क्योंकि घर जान धरी होने वाली है ।

जुगनूकी चमक

पंजाबके सिद्ध राजा रणजीतसिंह ससारसे चल चुके थे और राज्यसे वे प्रतिष्ठित पुरुष जिनके द्वारा उसका उत्तम प्रबन्ध चल रहा था, परस्परके द्वेष और अनबनके कारण मर मिटे थे। राजा रणजीतसिंहका बनाया हुआ सुन्दर किन्तु खोखला भवन अब नष्ट हो चुका था। कुँवर दिलीपसिंह अब इंग्लैण्डमें थे और रानी चंद्रकुँवरि चुनारके दुर्गमें। रानी चंद्रकुँवरिने विनष्ट होते हुए राज्यकी बहुत सँभालना चाहा, किन्तु शासनप्रणाली न जानती थी और कूटनीति ईर्ष्याकी आग भड़कानेके सिवा और क्या करती ?

राजके बाग़ वन लुके थे। रानी चंद्रकुँवरि अपने निवास-भवनके ऊपर छतपर गद्दी गद्दाकी ओर देख रही थी और सोचती थी—“हर ज्यों इस प्रकार स्वतंत्र हैं ? उन्होंने किनने गाँव और नगर दुबाये हैं, किनने जीव-जंतु तथा द्रव्य निगल गये हैं, किन्तु फिर भी वे स्वतंत्र हैं। कोई उन्हें बन्द नहीं करता। हमी लिए न कि वे बन्द नाँ रह सकूँ ? वे गरंगी, बल पावेंगी—और योंधके ऊपर चढ़कर उभर नष्ट कर देंगी, अपने जोरसे उभर बड़ा ले जावेंगी।

यह सोचते विचारते रानी गारीपर लेंट गई। उसकी आँखोंके सामने पूर्वोक्तपक्षी मृगियों मनोहर स्वप्नकी भाँति आने लगीं। कभी उसकी भोंदरी मरोड़ लपटावने भी अधिक तीव्र थी और उसकी हुंकारावट प्रकृतकी रुग्णित समीपमें भी अधिक प्राणशोक; किन्तु हाथ जब इनकी दाहिं धीमागमको पहुँच गई। वेमें तो आनेकी सुनानेके लिए, हमें तो आनेकी गढ़ानेके लिए। यदि विगष्ट तो किसीकी क्या विनाश करती है और प्रकृत हो तो किसीका क्या बना करती है ? रानी और चौकीमें किम्मा प्रकृत है ? रानीकी आँखोंमें आँखों छूँदे करने लगीं जो कभी किसी अदित प्राणनाशक और जगत्में अधिक अन्धमोह थी। यह हमी भाँजे अकेली, निराश, भित्ती वर गेह, जब कि आकाशके समीप विराट और शक्ति देवनेराना न था।

बैठी है। घबराकर पूछा—तैं कौन है रे ? नाव कहाँ लिये जात है ? रानी हँस पड़ी। मयके अन्तको साहम कहते हैं। बोला—सच बताऊँ या झूठ ?

मल्लाह कुछ भयभीत-सा होकर बोला—सच बताया जाय।

रानी बोली—अच्छा तो सुन। मैं-लाहौरकी रानी चंद्रकुँवरि हूँ। इसी किलेमें कैद थी। आज भागी जाती हूँ। मुझे जल्दी बनारस पहुँचा दे। तुझे निहाल कर दूँगी और यदि शरारत करेगा तो देर, इस कदारसे सिर काट दूँगी। सवेरा एनेसे पहले मुझे बनारस पहुँचना चाहिए।

यह धमकी काम कर गई। मल्लाहने विनीत भावसे अपना कमरल बिछा दिया और तेजीसे दौड़ चलाने लगा। किनारेके वृक्ष और ऊपर जगमगाते हुए तारे साथ साथ दौड़ने लगे।

३

प्रातःकाल चुनारके दुर्गमें प्रत्येक मनुष्य अनभिमत और व्याकुल था। सन्तरी, चौकीदार और लॉदियाँ सब सिर नीचे किये दुर्गके स्वामीके सामने उपस्थित थे। अन्वेषण हो रहा था, परन्तु कुछ पता न चलता था।

उधर रानी बनारस पहुँची। परन्तु यहाँ पहलेसे ही पुलिस और नेनाका जाल बिछा हुआ था। नगरके नाके बन्द थे। रानीका पता लगानेवालेके लिए एक बहुमूल्य पारितोषिककी सूचना दी गई थी।

बन्दीगृहसे निकलकर रानीको शान हो गया कि वह और हड़ कागगागमें है। दुर्गमें प्रत्येक मनुष्य उसका आजाकारी था। दुर्गका स्वामी भी उसे सम्मानकी दृष्टिसे देखता था। किन्तु आज स्वतन्त्र होकर भी उसके ओठ बन्द थे। उसे सभी स्थानोंमें शत्रु देख पड़ने थे। परागदिन पक्षीको पिंजरेके कोनेमें ही सुख है।

पुलिसके अफसर प्रत्येक आने-जानेवालेको ध्यानसे देखते थे, किन्तु उस भित्तिरिनीकी ओर किसीका ध्यान नहीं जाता था, जो एक पन्टी दुर्द भाड़ी पहने यात्रियोंके पीछे पीछे धीरे धीरे गिर चुकाये गङ्गाकी ओरसे चली आ रही है। न वह चीकती है, न दिक्कती है, न घबराती है। इस भित्तिरिनीकी नयीने रानीका रूप है।

रातमें भित्तिरिनीने अयोध्याकी राह ली। वह दिन भर निरुद्ध मार्गमें चली, और रातको किसी मुन्साज स्थानपर रुक गयी थी। कुछ देर बाद सो गयी। पैरोंमें जाले थे। कृष्ण-वदन कुन्तला गया था।

सिपाहीने उत्तर दिया—आपका एक सेवक ।

रानीने उसकी ओर निराश दृष्टिसे देखा और कहा—दुर्भाग्यके सिवा इस संसारमें मेरा कोई नहीं ।

सिपाहीने कहा—महारानीजी, ऐसा न कहिए । पंजाबके सिंहकी महारानीके वचनपर अब भी सैकड़ों सिर झुक सकते हैं । देशमें ऐसे लोग वर्तमान हैं जिन्होंने आपका नमक खाया और उसे भूले नहीं हैं ।

रानी—अब इसकी इच्छा नहीं । केवल एक शान्त-स्थान चाहती हूँ, जहाँपर एक कुटीके सिवा और कुछ न हो ।

सिपाही—ऐसा स्थान पहाड़ोंमें ही मिल सकता है । हिमालयकी गोदमें चलिए, वहीं आप उपद्रवसे बच सकती हैं ।

रानी (आश्चर्यसे)—शत्रुओंमें जाऊँ ? नेपाल कब हमारा मित्र रहा है ?

सिपाही—गणा जंगबहादुर दृढप्रतिज राजपूत हैं ।

रानी—किन्तु वही जंगबहादुर तो है जो अभी अभी हमारे विरुद्ध लार्ड डलहौजीको महायत्ना देनेपर उद्यत था ।

सिपाही (कुछ रुज्जित सा होकर)—तब आप महारानी चन्द्रकुंवरि थी, आज आप भित्तारिनी हैं । ऐश्वर्यके द्वेष्टी और शत्रु चारों ओर होने हैं । लोग जल्ती हुई आगकी पानीने उक्षाने हैं, पर राख माथेपर चढ़ाई जाती है । जाय उरा भी सोच विचार न करें । नेपालमें अभी भगका लोप नहीं हुआ है । आप भय त्याग करें और चर्टें, देखिए वह आपको किम भोनि सिर और आँगोंपर बिठाता है ।

रानीने रात इसी वृक्षकी छायामें गादी । सिपाही भी वहीं सोया । प्रातः काल वहाँपर दो तीमनामी धौंके देग पड़े । एकपर सिपाही स्याम सा और दूसरेपर एक अत्यन्त रूपवान् सुवर्ण । यह रानी चन्द्रकुंवरि थी, जो अपनी गन्धान्धानकी खोजमें नेपाल जाती थी । कुछ देर पीछे रानीने पूछा—यह पक्षी किसका है ? सिपाहीने कहा—राणा जंगबहादुरका । ये तीमपक्षी करने आये हैं; किन्तु हमने पहले पहुँच पायेगे ।

रानी—तुमने उनसे कुछे नहीं पत्रों न मिला दिया ? उनका दार्दिक भाव प्रकट हो जाय ।

सिपाही—वहाँ उनमें भिन्ना अगम्यता था । आप ताम्रगोरी छत्रिने न बच सकती ।

सूचना दी। दरबारके लोग उन्हें सन्मान देनेके लिए खड़े हो गये। महाराजको प्रणाम करनेके पश्चात् वे अपने सुसज्जित आसनपर बैठ गये। महाराजने कहा—राणाजी, आप सन्धिके लिए कौन कौन प्रस्ताव करना चाहते थे ?

राणाने नम्र भावसे कहा—मेरी अल्प बुद्धिमें तो इस समय कठोरताका व्यवहार करना अनुचित है। शोकाकुल शत्रुके साथ दयालुताका आचरण करना सर्वदा हमारा उद्देश्य रहा है। क्या इस अवसरपर स्वार्थके मोहमें हम अपने बहुमूल्य उद्देश्यको भूल जायेंगे ? हम ऐसी सन्धि चाहते हैं जो हमारे हृदयको एक कर दे। यदि तिब्बतका दरबार हमें व्यापारिक सुविधायें प्रदान करनेकी कटिबद्ध हो, तो हम सन्धि करनेके लिए सर्वथा उद्यत हैं।

मंत्रि-मंडलमें विवाद आरम्भ हुआ। सबकी सम्मति इस दयालुताके अनुसार न थी किन्तु महाराजने राणाका समर्थन किया। यद्यपि अधिकांश सदस्योंको शत्रुके साथ ऐसी नरमी पसन्द न थी, तथापि महाराजके विपक्षमें शोलनेका किसीको साहस न हुआ।

यात्रियोंके चले जानेके पश्चात् राणा जंगवहादुरने खड़े होकर कहा—सभाके उपस्थित सज्जनों, आज नेपालके इतिहासमें एक नई घटना होनेवाली है, जिसे मैं आपकी जातीय नीतिमत्ताकी परीक्षा समझता हूँ। इसमें सफल होना आपके ही वर्तमानपर निर्भर है। आज राज-सभामें आते समय मुझे यह आवेदनपत्र मिला है, जिसे मैं आप सज्जनोंकी मेजामें उपस्थित करता हूँ। निवेदकने तुलसीदासकी केवल यह चौपाई लिख दी है—

“ आपत-काल परगिण चारी ।

धीरज धर्म मित्र जरु नारी ॥ ”

महाराजने पूछा—यह पत्र किसने भेजा है ?

“ एक भिन्नगिनीने । ”

“ भिन्नगिनी कौन है ? ”

“ महारानी धन्त्रकुँवरि । ”

बहुरंग रानीने आश्चर्यसे पूछा—जो हमारी मित्र अंगरेज सरकारने तिरछ होकर भग्न पार्स है ?

राणा जंगवहादुरने लज्जित होकर कहा—जी हाँ। यद्यपि हम इसी विचारको दुसरे इन्तजोंमें प्रकट कर सकते हैं।

उद्देश्य भंग न हो तो, हमारी ओरसे शका होनेका न उन्हें कोई अवसर है और न हमें उनसे लज्जित होनेकी कोई आवश्यकता ।

कदयक—महारानी चंद्रकुँवरि यहाँ किस प्रयोजनसे आई हैं ?

राणा जंगमहादुर—केवल एक शान्ति-प्रिय सुख-स्थानकी खोजमें जहाँ उन्हें अपनी दुरवस्थाकी चिन्तासे मुक्त होनेका अवसर मिले । वह ऐश्वर्यशाली रानी जो रंगमहलोंमें सुख-विलास करती थी, जिसे फूलोंकी सेजपर भी चैन न मिलता था—आज सैकड़ों कोससे अनेक प्रकारके कष्ट सहन करती, नदी-नाले पहाड़ जंगल छानती यहाँ केवल एक रजित स्थानकी खोजमें आई है । उमड़ी हुई नदियाँ और उबलते हुए नाले, बरसातके दिन । इन दुःखोंको आप लोग जानते हैं । और यह सब उसी एक रजित स्थानके लिए—उसी एक भूमिके दृग्दोषी आशामें । किन्तु हम ऐसे स्थान-हीन हैं कि उनकी यह अभिलाषा भी पूरी नहीं कर सकते । उचित तो यह था कि उतनी-सी भूमिके बदले हम अपना हृदय फैला देते । सोचिए, किनने अभिमानकी बात है कि एक अपराधमें फँसी हुई रानी अपने दुःखके दिनोंमें जिस देशको राद करती है वह वही पवित्र देन है । महारानी चंद्रकुँवरिको हमारे इस अमयप्रद स्थानपर—हमारी शरणागतोंकी रक्षापर पूरा भरोसा था और वही निरवास उन्हें यहाँ तक लाया है । इसी आशानपर कि पशुपतिनाथकी शरणमें मुक्त हो शान्ति मिलेगी, वह यहाँ तक आई हैं । आपको अधिकार है चाहे उनकी आशा पूर्ण करें या उसे धूलमें मिला दे । चाहे रक्षणताके—शरणागतोंके माग्य मदान्तरण—के नियमोंको निगा बर इतिहासके पृष्ठोंपर अपना नाम छाप जायें, या जातयिता सया मदान्तरमन्त्री नियमोंको निटाकर स्वयं अपने ही पतित समझें । मुझे विश्वास नहीं है कि यहाँ एक भी मनुष्य ऐसा निरभिमान है कि जो हम अवसरपर शरणागत-मालिन धर्मको विस्तृत करके अपना सिर ऊँचा कर सके । अब मैं आपके अन्तिम निःशरणा प्रतीत्य कर रहा हूँ । कष्टिए, आप अपनी जाति और देशवा नान उद्वेगल करने या मर्त्यताके लिए अपने माथेपर अवयवका छीरा लगा देने ।

राजकुमारने उन्नतमे बहा —हम महारानीके चन्नीको चेतें रितावेन ।

कसान रिमगभिह बोले—हम मन्ददूत हैं और अपने धर्मेशा निर्वाह करने ।

जन्तल बननीरविह—हम उनको ऐसी भूमिधाममें लादने कि हम रजित हो जायगा ।

राणाने सिर झुकाकर कहा—आपके चरणारविन्दसे हमारे भाग्य उदय हो गये ।

६

नेपालकी राजसभाने पन्चीस हजार रुपयेने महारानीके लिए एक उत्तम भवन बनवा दिया और उनके लिए दस हजार रुपया मासिक नियत कर दिया ।

वह भवन आजतक वर्तमान है और नेपालकी शरणगतप्रियता तथा प्रणपालन-तत्परताका स्मारक है । पंजाबकी रानीको लोग आजतक याद करते हैं ।

यह वह सीढ़ी है जिनसे जातियाँ यशके सुनहले शिखरपर पहुँचती हैं ।

ये ही घटनाएँ हैं जिनसे जातीय इतिहास प्रकाश और महत्त्वको प्राप्त होता है ।

पोलिटिकल रेजीडेण्टने गवर्नमेंटको रिपोर्ट की । इस बातकी शंका थी कि गवर्नमेंट आफ् इण्डिया और नेपालके बीच कुछ रीतिराज हो जाय । किन्तु गवर्नमेंटको राणा जंगबहादुरपर पूर्ण विश्वास था और लक्ष नेपालकी राजसभाने विश्वास और सन्तोष दिलाया कि महारानी चन्द्रकुमारिको किंगी शत्रुभावके प्रयत्नका अवसर न दिया जायगा, तो भारत सरकारको भी सन्तोष हो गया । इस घटनाको भारतीय इतिहासकी धँधेरी रातमें ' जुगनूकी चमक ' कहना चाहिए ।

उसपर भी गीतका जादू असर कर रहा था। वह बोली—निःसन्देह ऐसा राग मैंने आज तक नहीं सुना, सिढ़की खोलकर बुलाती हूँ।

थोड़ी देरमें रागिया भीतर आया। सुन्दर सर्जिले बदनका नौजवान था। नगे पैर, नगे सिर, कंधेपर एक मृगचर्म, शरीरपर एक गेरुआ वस्त्र, हाथोंमें एक सितार। मुखारविन्दसे तेज छिटक रहा था। उसने दबी हुई दृष्टिसे दोनों कोमलाक्षी रमणियोंको देखा और सिर झुकाकर बैठ गया।

प्रभाणे शिराकृती हुई आँखोंमें देखा और दृष्टि नीची कर ली। उसने कहा—योगीजी, हमारे बड़े भाग्य थे कि आपके दर्शन हुए, हमको भी कोई पद सुनाकर कृतार्थ कीजिए।

योगीने सिर झुकाकर उत्तर दिया—हम योगी लोग नारायणका भजन करते हैं। ऐसे ऐसे दरबारोंमें हम भला क्या गा सकते हैं, पर आपकी इच्छा है तो सुनिए।

फर गण थोड़े दिनकी प्रीति।

कहाँ वह प्रीति कहाँ यह विचुरन, कहाँ मधुवनकी रीति,
फर गण थोड़े दिनकी प्रीति।

योगीका रसीला कदम स्वर सितारका सुमधुर निनाद, उसपर गीतका माधुर्य, प्रभाको बेरुष किये देता था। इसका मग्न स्वभाव और उसका मधुर रसीला गाना, अपूर्व मयोग था। जिस भाँति सितारकी ध्वनि गगन-गण्डनमें प्रतिध्वनित हो रही थी, उसी भाँति प्रभाके हृदयमें तदगोरी रिक्तता उठ रही थी। ये भावनाएँ जो अब तक शान्त थीं, नाग पड़ी। हृदय सुष-स्रग्म देवने लगा। गीतुके कम उतिष्ठिधर्मी परिवर्तन बन कर गेहगतो हुए भीरोंमें कर जोड़ तल्लनयन हो, कहते थे—

फर गण थोड़े दिनकी प्रीति

हृदय और हँस एनियोमें मृदा हुई आँखों सिर झुकाये करके गेह
पतिथोने मे मे कर करना थी—

फर गण थोड़े दिनकी प्रीति

और मधुवनकी प्रभाका हृदय की विचारकी मन्मानी तानके मर
मूलम म—

फर गण थोड़े दिनकी प्रीति

हो गया है। मैं हिन्दू कन्या हूँ, माता-पिता जिसे सौंप दें, उसकी दासी बनकर रहना मेरा धर्म है। मुझे तन मनसे उसकी सेवा करनी चाहिए। किसी अन्य पुरुषका ध्यान तक मनमें लाना मेरे लिए पाप है। आह! यह कटुपित हृदय लेकर मैं किस मुँहसे पतिके पास जाऊँगी! इन कानोंसे क्यों कर प्रणयकी बातें सुन सकूँगी जो मेरे लिए व्यग्रसे भी अधिक कर्ण-कटु होंगी! इन पापी नेत्रोंसे वह प्यारी प्यारी चितवन कैसे देख सकूँगी जो मेरे लिए वज्रसे भी अधिक हृदय-भेदी होगी! इस गलेमें वे मृदुल प्रेम-बाहु पड़ेंगे जो छोट-बड़से भी अधिक भारी और कठोर होंगे। प्यारे, तुम मेरे हृदय-मंदिरसे निकल जाओ। यह स्थान तुम्हारे योग्य नहीं। मेरा वश होता तो तुम्हें हृदयकी सेजपर सुलाती। परंतु मैं धर्मकी रस्तियोंमें बँधी हूँ।

इस तरह एक गरीना धीत गया। व्याहृके दिन निकट आते जाते थे और प्रभाका कमल-सा मुख कुम्हलाया जाता था। कभी कभी विरह पेदना एवं विचार-विषयसे व्याकुल होकर उसका चित्त चाहता कि सती-कुड़की गोदमें शान्ति लें। किन्तु गयसाक्ष्य इस शोकमें जान ही देंगे, यह विचार कर बह रुक जाती। सोचती, मैं उनकी जीवन मर्दस्व हूँ, मुझ अभागिनीको उन्होंने भ्रिा लाफ-प्याग्से पाला है; मैं ही उनके जीवनका आधार और अन्तकालकी आशा हूँ। नहीं, यो प्राण देकर उनकी आशाओंकी हत्या न करूँगी। मेरे हृदयपर चाहे जो बीते, उन्हें न बुढाऊँगी। प्रभाका एक योगी गरीबके पीछे उन्मत्त हो जाना कुछ शोभा नहीं देता। योगीका गान तानसेनके गानोंसे भी अधिक मनोहर क्यों न हो, पर एक राजकुमारीका उसके हाथों बिरा जाना हृदयकी दुर्बलता प्रकट करता है। किन्तु रायसाक्ष्यने दरबारमें विषादी, शौर्यवी, और वीरतासे प्राग् हवन करनेकी कोरें चर्चा न थी। यहाँ तो रात-दिन राग-रंगकी धूम रहती थी। यहाँ इसी शास्त्रके आचार्य प्रतिष्ठाके मसनदपर विराजित थे, और उन्हीं पर प्रभाकाके परमून्य गल गुदाये जाते थे। प्रभाके प्राग्भरते इसी गल-बाजुका मेरन बिपा था और उन्पर इनका गात्र रंग चर गया था। ऐसी अवस्थासे उनको गात-विधाने यदि भीषणत्व धारण कर बिषा तो शास्त्रार्थ ही क्या है!

३

रात्री के भूमधामसे हुई। रायसाक्ष्यने प्रभाको गले से लगाकर बिदा दिया। प्रभा बहुत रोई। उन्काको यह विपरी तरह सोझी ही न थी।

नज़ाकतसे लचकती हुई आ पहुँचती, तब रसीले योगीकी मोहनी छवि आँखोंमें आ बैठती, और सितारके मुललित सुर गूँजने लगते—

कर गए थोड़े दिनकी प्रीति

तब वह एक दीर्घ निःश्वास लेकर उठ बैठती और बाहर निकल कर पिजरेमें चहकते हुए पक्षियोंके कलरवमें शान्ति प्राप्त करती । इस भाँति यह स्वप्न तिरोहित हो जाता ।

8

इस तरह कई महीने बीत गये। एक दिन राजा हरिश्चंद्र प्रभाको अपनी चित्रशालामें ले गये। उसके प्रथम भागमें ऐतिहासिक चित्र थे। सामने ही शूरवीर महाराणा प्रतापसिंहा का चित्र नजर आया। सुखारविन्दसे वीरताकी ज्योति स्फुटित हो रही थी। तनिक और आगे बढ़कर दाहिनी ओर त्वाग्भिक्त जगमल, वीरनर साँगा और दिलेर दुर्गादास विराजमान थे। बायीं ओर उदार भीमसिंह बैठे हुए थे। राणा प्रतापके सम्मुख महाराष्ट्रके मर्ी वीर शिवाजीका चित्र था। दूसरे भागमें कर्मयोगी कृष्ण और मर्यादा पुरुषोत्तम राम विराजते थे। चतुर चित्रकारोंने चित्र निर्माणमें अपूर्व प्रौढाल दिखलाया था। प्रभा ने प्रतापके पाद-पद्मोंकी चूमा और वह कृष्णके सामने देर तक नेत्रोंमें प्रेम और धृष्टाके आँसू भरे मन्त्रक झुकाये खड़ी रही। उनके हृदयर इस समय कल्पित प्रेमका भग्न सदृश रहा था। उसे मात्रम होा कि वह उन महापुरुषोंके चित्र नहीं, उनहीं पवित्र आत्मायें हैं। उनकी चरित्रने भारतवर्षका इतिहास गौरवान्वित है। वे भारतके वरमृन्त्र जातीय रत्न, उच्च पोटिके, प्राणीय स्मारक, और समनभेद जातीय हृद्युत प्राणि हैं। ऐसी उच्च आत्माओंके सामने खड़े होने उसे मजबूत हो पाया। आगे बढ़ी दुर्गा भाग सामने आया। यहाँ ज्ञानमय दुर्गा योग साधनमें बैठे हुए देखा गये। उनकी शक्ति और भावराज्य शक्ति थे और सबे सामने विराजमान। एक ओर शक्ति-सामनामी पक्षी और अन्त मन्मदास यथायोग्य रहते थे। एक ही क्षण पर नृग मोहित बनने देखा और जाँके नामक दर्शन करने लगे। दोनों सन्तोके साथ विराजमान थे। दूसरी दीर्घात्मा ऐश्वर्यकी योगी है। उनके सामने स्वामी रामजीय और विवेकानन्द विराजमान थे। चित्रकारोंने ही कोशिश एक एक क्षण अपने हृदय की थी। प्रभा ने इनके चरित्रों पर गहरा दृष्टि देखा।

प्रभाने सोचा, इस प्रश्नका उत्तर दे दूँ तो बाकी क्या रहता है। उसे विश्वास हो गया कि आज कुशल नहीं है। वह छतकी ओर निरसती हुई बोली—सूरदासका कोई पद था।

हरिश्चन्द्रने कहा—यह तो नहीं—

कर गए थोड़े दिनकी प्रीति।

प्रभाकी आँखोंके सामने अँघेरा छा गया, सिर घूमने लगा, वह खड़ी न रह सकी, बैठ गई, और हताश होकर बोली—हाँ, यही पद था। फिर उसने कलेजा मजबूत करके पूछा—आपको कैसे मालूम हुआ ?

हरिश्चन्द्र बोले—वह योगी मेरे यहाँ अक्सर आया जाया करता है। मुझे भी उसका गाना पसन्द है। उसीने मुझे यह हाल बताया था, किन्तु वह तो कहता था कि राजकुमारीने मेरे गानोंको बहुत पसन्द किया और पुनः आनेके लिए आदेश किया।

प्रभाको अब सच्चा क्रोध दिखानेका अवसर मिल गया। वह बिगड़ कर बोली—यह बिल्कुल झूठ है। मैंने उससे कुछ नहीं कहा।

हरिश्चन्द्र बोले—यह तो मैं पहले ही समझ गया था कि यह उन महाशयकी चालाकी है। रीग मारना गवैयोकी आदत है। परन्तु इसमें तो मुझे इनकार नहीं कि उसका गाना बुरा न था ?

प्रभा बोली—ना। अच्छी चीज़को बुरा कौन कहेगा !

हरिश्चन्द्रने पूछा—फिर सुनना चाहो तो उसे बुलवाऊँ। सिरफे बल दीया आयेगा।

'क्या उनके दर्शन फिर होंगे ?' इस आशाने प्रभाका मुरझाकर विकसित हो गया। परन्तु इन नई महीनोंकी लगातार कोशिशमें मिन बानकी भ्रष्टानेमें यह क्षितिपूर्व सफल हो चली थी, उसके सिर नज़ीन हो जानेका भय हुआ। बोली—इस समय गाना सुननेसे भय ही नहीं आता।

राजाने कहा—या मैं न मानूँगा कि तुम और गाना नहीं सुनना चाहती, मैं उसे अभी बुलाये जाता हूँ।

यह कहकर गाना हरिश्चन्द्र तीसरी मरह बरमेले कारर निकल गये। प्रभा उन्हें रोक न सकी। वह खड़ी निज़ामें हरी पड़ी थी। दृष्टिके दुर्लभ दोर खड़ी लहरें बाने बरमेले, उठती थीं। हरिश्चन्द्रने दूर जिनट खींचे होने के उमे गिजारेते मरउने मुखे काध बोलीकी खड़ी नज़ नज़ाने दी—

अमावास्याकी रात्रि

१

दिवालीकी सन्ध्या थी। भीनगरके घूरी और राइहरीके भी भाग्य चमक उठे थे। करवेके लड़के और लड़कियाँ इवेत थालियोंमें दीपक लिये मन्दिरकी ओर जा रही थीं। दीपोंसे अधिक उनके मुखारविन्द प्रकाशमान थे। प्रत्येक गृह रोशनीसे जगमगा रहा था। केवल पण्डित देवदत्तका मतपरा भवन अन्धकारमें काली घटाकी भाँति गम्भीर और भयंकर रूपमें खड़ा था। गम्भीर इसलिए कि उसे अपनी उन्नतिके दिन भूले न थे। भयंकर इसलिए कि यह जगमगाहट मानो उसे निंदा रही थी। एक समय यह था जब कि ईर्ष्या भी उसे देखा देखा कर टाथ मलती थी, और एक समय यह है जब कि घृणा भी उसपर कटाक्ष करती है। द्वारपर द्वारपालकी तगदबद मदद और घरण्डके कृश गंध थे। दीवानखानेमें एक मजह्ज सौंद अकड़ता था। ऊपरके घरोमें जहाँ सुन्दर रमणियाँ मनोहरागी तल्लील गाती थीं, वहाँ आज तल्लील कदुतरीके सधुर हार सुनारें देते थे। किसी अँसरेज़ी मंदिरमेंके प्रियाईके आचरणकी भाँति उसकी जड़ें हिल गई थीं और उसकी दीवारें किसी विषम स्त्रीके हृदयकी भाँति विदीर्ण हो रही थीं। पर समयकी हम कुछ कह नहीं सकते। समयमें निन्दा स्वर्थ और भूल है, यह मूर्खता और अतृप्तमिलाका फल था।

अमावास्याकी रात्रि थी। प्रकाशमें पराजित होकर मानो अन्धकारमें उनी तिमिरात भवनमें क्षण ली थी। पण्डित देवदत्त अपने शयन-अमावास्या के कमरेमें मौन परन्तु चिन्तामें निमग्न थे। आज एक महीनेके उनका पत्नी 'गिरजा' की विन्दुमीकी निर्दय कालने तिमिरात बना दिया है। पण्डितकी दरिद्रता और हृदयकी भयानकता ने इस तीक्ष्ण थे। भाग्यका क्रोध उनसे और पैरों पैशात था। किन्तु यह नहीं किन्ति गहन-रात्रिमें बाहर थी। देनारे दिनके दिन गिरजाके शिरहाने बैठके उठके भ्रमणसे हुए सुगंधी देनकर हुए

दलालोंकी खुशामद और मुयकिलोंकी नाज़बंदारीके बावजूद भी आप अदालते अदालतमें भूते कुत्तेकी तरह चक्कर लगाते फिरते हैं, अगर आप गला फाड़ फाड़ चीरने, भेज़पर हाथ-पैर पटकनेपर भी अपनी तकरीरसे कोई अत्तर पैदा नहीं कर सकते, तो आप अमृतविन्दुका इस्तेमाल कीजिए। इनका सबसे बड़ा फायदा जो पहले ही दिन मालम हो जायगा यह है कि आपकी आँखें खुल जायेंगी और आप फिर कभी इतिहासवाज़ हकीमोंके दामफरेमें न फँसेंगे।”

वैद्यजी इस विशापनको समाप्त कर उच्च स्वरसे पढ़ रहे थे, उनके नेत्रोंमें उचित अभिमान और आशा झलक रही थी कि इतनेमें देवदत्तने बाह्यमें आयाज दी। वैद्यजी बहुत खुश हुए। रातके समय उनकी फीम दुगुनी थी। लालटेन लिये हुए बाहर निकले तो देवदत्त रोता हुआ उनके पैरोंसे लिपट गया और बोला—वैद्यजी, इस समय मुझपर दया कीजिए। गिरिजा अब कोई सायतको पाहुनी है। अब आप ही उम्मे बचा सकते हैं। यों तो मेरे भागमें जो लिखा है वही होगा, किन्तु इस समय तनिय चतकर आप देना लें तो मेरे दिलकी दाह मिट जायगी। मुझे धर्य्य हो जायगा कि उनके लिए मुझसे जो कुछ हो सकता था मैंने किया। परमान्धा जानता है कि मैं इस योग्य नहीं हूँ कि आपकी कुछ सेवा कर सकूँ, किन्तु अब तक जीऊँगा आपका धम गाऊँगा और आपके इशारोंका गुलाम बना रहूँगा।

हकीमजीको पहले कुछ तरस आया किन्तु वह सुगुनकी चमक थी जो शीघ्र स्वार्थक विमाल अन्धकारमें मिलीन हो गई।

४

वही अमावास्या की रात थी। ज़ख्मोंर भी मछाटा छा गया था। जीनेवाले अपने यथोक्त नीरमे जगाकर इनम देने में। हाथोंवाले अपनी छट और ओलिया निनोंमें क्षमाके लिए प्रार्थना कर रहे थे। हाथोंमें पोटोंके लगातार दारद दासु और अन्धकारकी चौरटे हुए जानमें आने लगे। उनका सुनावनी ध्वनि इस निरन्तर अन्धकारमें साजसज्जा में प्रकीर्ण होता था। यह दारद समीप होते गये और दानमें धरित देवदत्तके हाथोंर आपर उनका गंधइसे दूर होने। पण्डितजी दारद समीप निराशाके अन्धकार मेंदुःखने लगे गये थे। दोरमें इस योग्य भी नहीं थे कि दातोंके भी शक्ति स्वामी लिए

दलालोंकी खुशामद और मुकदिलोंकी नाज़बंदारीके बावजूद भी आप अहाते अदालतमें भूखे कुत्तेकी तरह चक्कर लगाते फिरते हैं, अगर आप गला फाड़ फाड़ चीखने, मेज़पर हाथ-पैर पटकनेपर भी अपनी तकरीरसे कोई असर पैदा नहीं कर सकते, तो आप अमृतविन्दुका इस्तेमाल कीजिए । इसका सबसे बड़ा फायदा जो पहले ही दिन मालम हो जायगा यह है कि आपकी आँखें खुल जायेंगी और आप फिर कभी इस्तिहारबाज इकीमोंके दामपरेबमें न फँसेंगे । "

बैद्यजी इस विज्ञापनको समाप्त कर उच्च स्वरसे पढ़ रहे थे; उनके नेत्रोंमें उचित अभिमान और आशा झलक रही थी कि इतनेमें देवदत्तने बाहरने आवाज दी । बैद्यजी बहुत खुश हुए । रातके समय उनकी फीम दुगुनी थी । लालटेन लिये हुए बाहर निकले तो देवदत्त रोता हुआ उनके पैरोंसे लिपट गया और बोला—बैद्यजी, इस समय मुझपर दया कीजिए । गिरिजा अब कोई सायतको पाहुनी है । अब आप ही उसे बचा सकते हैं । यों तो मेरे भाग्यमें जो लिखा है वही होगा; किन्तु इस समय तनिक नलकर आप देव लें तो मेरे दिलकी दाह मिट जायगी । सुनो धैर्य हो जायगा कि उसके लिए मुझसे जो कुछ हो सकता था मैंने किया । परमात्मा जानता है कि मैं इस योग्य नहीं हूँ कि आपकी कुछ सेवा कर सकूँ, किन्तु जब तक जीऊँगा आपका यश गाऊँगा और आपके इशारोंका गुलाम बना रहूँगा ।

हर्षामजीको पहले कुछ तरस आया किन्तु यह पुगूतकी नम्रपत्नी जो सीधे स्वार्थके विशाल अन्धकारमें विहीन हो गई ।

४

गरीब जगवास्याकी रात थी । शूतोंपर भी सजाया छा गया था । जीन्ने तले अपने दबोचो नींदसे जगाकर इनाम देते थे । हाथमें हाथ बाधनी दण और प्रोक्षित ज्विनों लगाए लिये प्रायणा पर गंदे थे । इतनेमें धात्रीके लगानार झट धातु और अन्धकारकी चोम्ने हुए जानने आने लगे । उनकी सुशायी परमि हम निम्नस्थ रायस्यामें अन्धन्त भी प्रतीत होती थी । यह रात समीर होते गंदे और अन्धने पविद्ध देवदत्तके मनीर आतर लम्बे पददरने हुए गंदे । वह दलाली उमर समस्त ईश्वरगर्भे बाजार समुद्रमें लीते गये रहे थे । शीघ्रमें इस योग्य भी नहीं थे कि प्राचीन की अपिष्ट पानी फिर

वह दीनता जो उनके मुखपर छाई हुई थी थोड़ी देरके लिए बिदा हो गई। वे गम्भीर भाव धारण करके बोले—यह आपका अनुग्रह है जो ऐसा कहते हैं। नहीं तो मुझ जैसे कपूतमें तो इतनी भी योग्यता नहीं है जो अपनेको उन लोगोंकी सन्तति कह सकूँ। इतनेमें नौकरोंने आँगनमें फर्श बिछा दिया। दोनों आदमी उसपर बैठे और बातें होने लगीं, वे बातें जिनका प्रत्येक शब्द पंडितजीके मुखको इस तरह प्रफुल्लित कर रहा था जिस तरह प्रातःकालकी वायु फूलोंको खिला देती है। पण्डितजीके पितामहने ननयुक्त ठाकुरके पितामहको पचीस सहस्र रुपये कर्ज दिये थे। ठाकुर अब गयामें जाकर अपने पूर्वजोंका भाद्व करना चाहता था। इसलिए जरूरी था कि उसके जिम्मे जो कुछ ऋण हो उसकी एक एक कौड़ी चुका दी जाय। ठाकुरको पुराने बही-खातेमें यह ऋण दिखाई दिया। पचीसके अब पंच-उत्तर हजार हो चुके थे। बही ऋण चुका देनेके लिए ठाकुर आया था। धर्म ही यह शक्ति है जो अन्तःकरणमें आजर्स्वी विचारोंको पैदा करती है। हाँ, इस विचारको कार्यमें लानेके लिए एक परिश्र और बलवान् आत्माकी आवश्यकता है। नहीं तो वे ही विचार क्रूर और पापमय हो जाते हैं। अन्तमें ठाकुरने पूछा—आपके पास तो ये चिट्ठियाँ होतीं ?

देवदत्तका दिल बैठ गया। वे सँभलकर बोले—सम्भवतः हों। कुछ यह नहीं सीझें।

ठाकुरने लापगवाहीने कहा—इदिष्ट, यदि मिल जायें तो हम ऐसे जायेंगे। पण्डित देवदत्त उठे, लेकिन हृदय टटा हो रहा था। शका होने लगी कि वही भाग्य हरे भाग न दिया रहा हो। कौन जाने यह पुर्जा कबपर साध हो गया या नहीं। यदि न मिला तो हमने शोक देना है। शोक कि वृषका प्याला सामने आकर हाथसे गूटा जाता है।—देवमवान् ! यह पानी मिल जाय। हमने अनेक बंध पाये हैं, अब हमनर दया करो। इस प्रकार आमा और पितासाहिब दयामें देवदत्त भीतर मरे और दीनारके टिमटिमाने हुए प्रकाशमें बचे हुए पत्थरोंको उलट-पुलट कर देखने लगे। वे उलट पके और उगड़ने में हुए पाषाणोंकी भाँति अजगत्की अजगत्में दो तीन बार कुट्टे और दीढ़ कर गिरि गको गलेमें लगा लिया और बोले—प्यारी, यदि हमने पास तो १ शक कम जायगी। इस लज्जामें उन्हें एवम् यह नहीं जान सका कि 'गिरिजा' अब बरी नहीं है, केवल उगड़ी गोप है।

उसी गलमली थैलेमें रख दिया। किन्तु अब उनका यह विचार नहीं था कि संभवतः उन मुदोंमें भी कोई जीवित हो उठे। वरन् जीविकासे निश्चित हो अब वे पैतृक प्रतिष्ठापर अभिमान कर सकते थे। उस समय वे धैर्य और उत्साहके नशेमें मस्त थे। वस, अब मुझे जिन्दगीमें अधिक सम्पदाकी जरूरत नहीं। ईश्वरने मुझे इतना दे दिया है। इसमें मेरी और गिरिजाकी जिन्दगी आनन्दसे कट जायगी। उन्हें क्या खबर थी कि गिरिजाकी जिन्दगी पहले कट चुकी है। उनके दिलमें यह विचार गुदगुदा रहा था कि जिस समय गिरिजा इस आनन्द-समाचारको सुनेगी उस समय अवश्य उठ बैठेगी। चिन्ता और कष्टने ही उसकी ऐसी दुर्गति बना दी है। जिते भरपेट कभी रोटी नसीब न हुई, जो कभी नैराश्यमय धैर्य और निर्धनताके दृढ-विदारक बन्धनसे मुक्त न हुई, उसकी दशा इसके सिवा और हो ही गया सकती है? यह सोचते हुए वे गिरिजाके पास गये और उसे अहिस्तासे हिलाकर बोले—गिरिजा, आँखें खोलो। देखो, ईश्वरने तुम्हारी चिन्ता सुन ली और हमारे ऊपर दया की। कैसी तबीयत है?

किन्तु जब गिरिजा तनिक भी न भिनकी तब उन्होंने चादर उठा दी और उसके मुँहकी ओर देखा। हृदयसे एक कण्ठात्मक ठण्ठी आह निकली। ये वहीं सर घाम कर बैठ गये। आँखोंसे गीणितकी धूँदें टपक पड़ीं। आह! क्या यह सम्पदा इतने महाने मूल्यपर मिली है? क्या पद्मात्माके दरबारसे मुझे इस प्यारी जानका मूल्य दिया गया है? ईश्वर, तुम मूल्य न्याय करते हो! मुझे गिरिजाकी जायदम्यता है। उपयोगी आपदाकता नहीं। वह सौदा बका भईगा है।

६

समावास्याकी अँदेरी रात गिरिजाके अन्धकारमय जीवनकी गींठी तमाम हो चुकी थी। गेतोंमें हल चलानेवाले शिवान ऊँचे और गुरावने भारसे गा रहे थे। गर्दीले कँचसे हुए बड़े खरबन्देकतले बाहर निकलनेकी माधेन कर रहे थे। पनपटपर गांवकी अल्बेनी मिर्चों जमा हो गई थी। पानी मल्लेरे लिए नहीं, इतनेके लिए। कोई पहेकी झुँदने वाले हुए शक्की पोस्टी गांवकी नकल कर रही थी, कोई शक्कीने निगटी हुई खरनी गेटोंके झुँदने कर प्रेमरहस्यकी बाने करती थी। बड़ी जिंजी गींठी हुए पोतीकी मोरने

ममता

2

बाबू गमरधादास दिल्लीके ऐश्वर्यशाली खनी थे, बहुत ही ठाट-बाटसे रहनेवाले। बड़े बड़े अमीर उनके यहाँ नित्य आते थे। वे आये हुआका आदर-सत्कार ऐसे अच्छे ढंगसे करते थे कि इस बातकी धूम सारे महल्लेमें थी। नित्य उनके दरवाजेपर किसी न किसी बहानेसे हुए मित्र एकट्ठा हो जाते, टेनिस खेलते, ताश उड़ता, हागमोनियमके मधुर स्वरोंसे जी बहलाते, चाय-पानीसे हृदय प्रफुल्लित करते और अपने उदार मित्रके सहाय्यक्षारकी प्रशंसा करते। बाबूमाताब दिन-भरमें इतने रक्त बदलते थे कि उनपर 'पेरिस' की 'परियों'को भी ईर्ष्या हो सकती थी। कई बैकोंमें उनके डिस्से थे। कई दूकानें थीं। किन्तु बाबू साफबक्को इतना अचकांग न था कि उनकी कुछ देख भाल करते। अतिथि-सत्कार एकपरिग्र धर्म है। वे सच्ची देगदितौपिताकी उमदाते कहा करते थे—अतिथि-सत्कार आदिकापसे भारतवर्षके निवासियोंका एक प्रधान और सराहनीय गुण है। अभ्यागतोंका आदर-सन्मान करनेमें हम अधितीय हैं। हम इसीसे संसारमें मनुष्य कहलाने योग्य हैं। हम मय कुछ सोचें हैं, किन्तु जिस दिन हममें यह गुण श्रेष्ठ न रहेगा, वह दिन हिन्दू जातिसे मिष्ट लक्ष्मी, अमान और मृत्युका दिन होगा।

[illegible]

माँके नाम जमा कर दिये कि उसके ब्याजसे उसका निर्वाह होता रहे। किन्तु वेटेके इस उत्तम आचरणपर माँका दिल ऐसा टूटा कि वह दिल्ली छोड़कर अयोध्या जा रही। तबसे वहीं रहती है। बाबूसाहब कभी कभी मिसेज रामरक्षासे छिपकर उससे मिलने अयोध्या जाया करते थे, किन्तु वह दिल्ली आनेका कभी नाम न लेती। हाँ, यदि कुशल-क्षेमकी चिट्ठी पहुँचनेमें कुछ देर हो जाती तो विवश होकर समाचार पूछ लेती थी।

२

उसी महत्त्वमें एक सेठ गिरधारीलाल रहते थे। उनका लाखोंका लेन-देन था। घे हीरे और रत्नोंका व्यापार करते थे। बाबू रामरक्षाके दूरके नातेमें साहू होते थे। पुराने ढंगके आदमी थे—प्रातःकाल यमुनाखान करनेगले, गायत्री अपने हाथोंसे झाड़ने-पोछनेवाले। उनसे मिस्टर रामरक्षाका स्वभाव न मिलता था। परन्तु जब कभी रुपयोंकी आवश्यकता होती तो वे नेट गिरधारीलालके यहाँसे बैलटके मेंगा लिया करते। आपसका मामला था, केवल चार अंगुलके पत्रपर रुपया मिल जाता था, न कोई दस्तावेज़, न स्टाम्प, न साक्षियोंकी आवश्यकता। मोटरवारके लिए दम हजारकी आवश्यकता हुई, वह वहाँसे आया। घुसदौड़के लिए एक आस्ट्रेलियन घोड़ा केद हजारमें लिया, उसके लिए भी रुपया नेटजीपे यहाँसे आया। धीरे धीरे कोई भीम हजारका मामला हो गया। नेटजीपे गरल हृदयके आदमी थे। समझते थे कि उसके पास दूकाने हैं। यँभी रुपया है। जब जी चाहेगा रुपया पगल कर लेगे, किन्तु जब दो तीन वर्ष व्यतीत हो गये, और नेटजीपे तकाजीकी अपेक्षा मिस्टर रामरक्षाकी मोगहीका आधिक्य रहा, तो गिरधारीलालकी मंदिर हुआ। वह एक दिन रामरक्षाके महानपर आये और सम्म मायसे बोले—भाई साहब, गुरो एक टुप्पीका दरवाजा देना है। यदि आप मेरा हिमाय कर दें तो बड़ा अच्छा हो। यह कहकर गिरधारीलाल और उनके पण दिगलगे। मिस्टर रामरक्षा किसी गार्टेन पार्टीमें सम्मिलित होनेके लिए तैयार थे। बो—दम समय खाना बँजिए। फिर देखेंगे तो, अच्छी क्या है।

गिरधारीलालकी बाइ माददकी कपाईपर पोछ ला गया। वे कह होकर बोले—आपकी अच्छी मर्जी है, दुरो हो है। हो हो करने साक्षिणी मेरी हाँ हो रही है। मिस्टर रामरक्षाने अन्तर्लीन प्रकट करते हुए वही देखा। पानी

न उठे। मुँह हाथ भी न धोया, खानेकी कौन कहे। इतना जानते थे कि दुख पड़नेपर कोई किसीका साथी नहीं होता। इसलिए एक आपत्तिसे बचनेके लिए कहीं कई आपत्तियोंका बोझा न उठाना पड़े। मित्रोंको इन मामलोंकी खबर तक न दी। जब दोपहर हो गया और उनकी दशा ज्योंकी त्यों रही तो उनका छोटा लड़का बुलाने आया। उसने बापका हाथ पकड़कर कहा—
लालाजी, आज काने क्यों नहीं तलते ?

रामरक्षा—भूल नहीं है।

“क्या काया है ?”

“मनकी मिठाई।”

“और क्या काया है ?”

“मार।”

“किचने मारा ?”

“गिरघारीलालने।”

लड़का रोता हुआ घरमें गया, और इस मारकी चोटसे देर तक रोता रहा। अन्तमें तस्तरोंमें रखली हुई दूधकी मलाईने उसकी इस चोटपर मरहमका काम किया।

गौरीसे जब जूनेकी आस नहीं रहती तो ओपधि छोड़ देता है। मि० रामरक्षा जब दस गुत्थीको न सुलझा सके, तो चादर तान ली और मुँह लपेट कर सो रहे। शामको एकाएक उठकर सेठजीके यहाँ जा पहुँचे और कुछ प्रसाजधानीसे बोले—महाशय, मैं आपका हिसाब नहीं कर सकता।

सेठजी घबराकर बोले—क्यों ?

रामरक्षा—दरलिये कि मैं इस समय दरिद्र हूँ। मेरे पास एक फीदी भी नहीं है। आप अपना रुपया जैसे चाहें वसूल कर लें।

सेठ—बद जाप कैसी बातें कहते हैं ?

रामरक्षा—बहुत सखी।

सेठ—दुकाने नहीं हैं ?

रामरक्षा—दुकाने आप मुक्त ले जाइए।

सेठ—देहके रिम्मे ?

रामरक्षा—बद कपड़े उड़ गये।

प्रत्यक्षोंमें हार्दिक धर्मभावसे सहायता दी है। केवल एक पुत्र है जिसको श्रीमान् वायसरायके दरबारमें कुर्सीपर बैठनेका अधिकार प्राप्त है और आप सन महाराज उसे जानते हैं।”

उपस्थित जनोंने तालियाँ बजाई।

सेठ गिरधारीलालके मुहल्लेमें उनके एक प्रतिवादी थे। नाम था मुशी फैजुल रहमान राँ। वही ज़मींदार और प्रसिद्ध वकील थे। ब्राह्म रामरक्षाने शायनी हड़ना, साहस, बुद्धिमत्ता, और मृदु भाषणसे मुन्शी साहबकी सेवा करनी आरम्भ की। सेठजीको परास्त करनेका यह अपूर्व अवसर हाथ आया। वे रात और दिन इसी धुनमें रहते। उनकी मीठी और रोचक बातोंका प्रभाव उपस्थित जनोंपर बहुत ही अच्छा पड़ता। एक बार आपने असाधारण धनकी उमझमें आकर कहा—यै डकेकी चोट कहता हूँ कि मुशी फैजुल रहमानसे अधिक योग्य आदमी आपको दिल्लीमें न मिल सकेगा। यह वह आदमी है जिसकी गजलोंपर कवि जनोमें बाह बाह मच जाती है। ऐने भेष्ट आदमीकी सहायता करना मैं अपना जातीय और सामाजिक धर्म समझना हूँ। अत्यन्त शोकका विषय है कि बहुतसे लोग इस जातीय और पवित्र कामको दृष्टिगत लाभका साधन बनाते हैं। धन रौनक वस्तु है, श्रीमान् वायसरायके दरबारमें प्रतिष्ठित होना और वस्तु। किन्तु सामाजिक नेता, जातीय चाकरी और ही चीज है और यह मनुष्य जिसका जीवन न्याय प्राप्ति, बेईमानी, कटोमता तथा निर्दयता और मुरा-विलासमें व्यतीत होता हो। यह इस समाजके योग्य कदापि नहीं है।

५

सेठ गिरधारीलाल इस धन्योक्तिपूर्ण भाषणका हाथ दुनकर मोड़ते आय हो गये। मैं बेईमान हूँ। व्यावसायिक धन पानेवाला हूँ। गिरदी हूँ। रुझान हूँ, जो मुझे मेरा नाम नहीं दिया। किन्तु अब भी एक मेरे नाममें हो, मैं अब भी मुझे जिस तरह बचाऊँगा सफल हूँ। पुनर्जाति होने आगमन सेट जाना। इधर रामरक्ष अपने घरमें गहरा रहे। यहाँ तक कि ‘पोटिंग के’ आ पहुँचा। गिरधारीलालरायों अपने उद्योगमें बहुत कुछ भाग्य प्राप्त हुई थी। आज वे बहुत प्रसन्न थे। उनका निश्चिन्ताभावकी नीचा दिखाई देता। आज उस ही क्षण देखते कि भन गिरधारीलाल राय दरबारोंकी इकट्ठा नहीं कर सकेंगे। जिस समय है पुनः

कोई भली मानुस। रेशमी साड़ी पहने हुए हैं। हाथोंमें सोनेके कड़े हैं। पैरोंमें टाटके स्लीपर हैं। बड़े घरकी स्त्री जान पड़ती हैं।

यों साधारणतः सेठजी पूजाके समय किसीसे नहीं मिलते थे। चाहे कैसा ही आवश्यक काम क्यों न हो, ईश्वरोपासनामें सामयिक बाधाओंको घुसने नहीं देते थे। किन्तु ऐसी दशामें जब कि बड़े घरकी स्त्री मिलनेके लिए आवे, तो थोड़ी देरके लिए पूजामें विलम्ब करना निन्दनीय नहीं कहा जा सकता। ऐसा विचार करके वे नौकरसे बोले—उन्हें बुला लाओ।

जब वह स्त्री आई तो सेठजी स्वागतके लिए उठ कर खड़े हो गये। तत्पश्चात् अत्यन्त कोमल वचनोंसे कावणिक शब्दोंमें बोले, “माता, कहाँसे आना हुआ?” और जब वह उत्तर मिला कि वह अयोध्यासे आई है, तो आपने उसे फिरसे दण्डवत की, और चीनी तथा मिश्रीसे भी अधिक मधुर और नयनीतसे भी अधिक चिकने शब्दोंमें कहा “अच्छा, आप श्रीअयोध्या-जीसे आ रही हैं? उस नगरीका क्या कहना। देवताओंकी पुरी है। बड़े भाग थे कि आपके दर्शन हुए। यहाँ आपका आगमन कैसे हुआ?” स्त्रीने उत्तर दिया, “घर तो मेरा यहीं है।” सेठजीका मुख पुनः मधुरताका चित्र बना। वे बोले, “अच्छा तो मकान आपका इसी शहरमें है? तो आपने माया-नजालको त्याग दिया? यह तो मैं पहले ही समझ गया था। ऐसी पवित्र आत्मायें मेसारमें बहुत थोड़ी हैं। ऐसी देखियोंके दर्शन दुर्लभ होने हैं। आपने मुझे दर्शन दिये, बड़ी कृपा थी। मैं इस योग्य नहीं, जो आप जैसी विदुषियोंकी कुछ सेवा कर सकूँ। किन्तु जो काम मेरे योग्य हो, जो कुछ मेरे किये हो सकता हो, उसके करनेके लिए मैं सब माँगने तैयार हूँ। यहाँ गैट-साइकारोंने मुझे बहुत बदनाम कर रखा है। मैं मर्यादाओंमें गड़बड़ा हूँ। उसका वागण मिया इसमें जोर कुछ नहीं कि नया ये लोग त्याग्य ध्यान रखते हैं, वहाँ मैं भलाई-अध्यान रखा हूँ। यदि कोई बड़ी अवस्थाका श्रद्धा मनुष्य मुझमें कुछ कहने सुननेके लिए आया है तो विनम्र मानो, मुझसे उसका घनन टापा नहीं जागा। कुछ तो इससेना विचार, इस उसके दिव्य दृष्टि जनेका दर, कुछ यह पताल कि कहीं वह विद्वत्प्राप्तिमें कष्टमें न पड़ जाय, मुझे उसकी इच्छाओंकी पूर्ति के लिए प्रयत्न कर देता हूँ। मेरा यह निश्चय है कि अपनी प्राप्ति और हम बनाय। किन्तु हम प्रकाशनी क्षति आपके समझने करता व्यर्थ है। नास्तिक भी करवा मानता है। मेरे योग्य जो कुछ कार्य हो उसके लिए मैं निरन्तर तैयार हूँ।”

अभिलाषा होगी। सरकारमें तुम्हारी बढ़ाई होगी और मैं सच्चे हृदयसे कहती हूँ कि शीघ्र ही तुम्हें कोई न कोई पदवी मिल जायगी। रामरक्षाकी अँगरेजोंसे बहुत मित्रता है, वे उसकी बात कभी न टालेंगे।

सेठजीके हृदयमें सुदगुदी पैदा हो गई। यदि इस व्यवहारसे वह पवित्र और माननीय स्थान प्राप्त हो जाय, जिसके लिए हजारों खर्च किये, हजारों गालियों दीं, हजारों अनुनय-विनय कीं, हजारों खुशामदे कीं, खानसामोंकी सिफ़ाकियाँ सही, बगलोंके चक्कर लगाये। अहा, इस सफलताके लिए ऐसे कई हजार में खर्च कर सकता हूँ। निस्संदेह मुझे इस काममें रामरक्षासे बहुत कुछ सहायता मिल सकती है। किन्तु इन विचारोंको प्रकट करनेसे क्या लाभ? उन्होंने कहा, “माता, मुझे नाम नमूदकी बहुत चाह नहीं है। बड़ोंने कहा है, ‘नेकी कर और दरियामें डाल।’ मुझे तो आपकी बातका खयाल है। पदवी मिले तो लेनेसे इन्कार नहीं, न मिले तो उसकी वृष्णा भी नहीं। परन्तु यह तो बताइए कि मेरे रुपयोंका क्या प्रयत्न होगा? आपको मालूम होगा कि मेरे दस हजार रुपये जाते हैं।”

रामरक्षाकी भाँने कहा—तुम्हारे रुपयोंकी जमानत मैं करती हूँ। यह देखो बंगाल बकरी पास-जुक है। उसमें मेरा दस हजार रुपया जमा है। उस रुपयसे तुम रामरक्षाको कोई व्यासाम करा दो। तुम उस दूकानके मालिक रहोगे, रामरक्षाको उसका भेजेवर बना देना। जब तक वह तुम्हारे कपड़े चले तब तक निभाना। नहीं तो दूकान तुम्हारी है। मुझे उसमेंने कुछ नहीं चाहिए। मेरी रोज-रजम लेनेवाला ईश्वर है। रामरक्षा अच्छी तरह रहे, इसने अफ़िका मुझे और कुछ न चाहिए, यह कह कर पास-जुक सेठजीको दे दी। गाँफे इस अथाह प्रेमने सेठजीको मिला कर दिया। पानी उबल पड़ा और पथर उसके भाँने ठूँक गया। जीवनमें ऐसे पवित्र दान देवानेके काम शक्य नहीं मिलते हैं। सेठजीने दायर्या परोगारकी एक तरह-सी उठी। उनकी आँखें दमकना आरंभ। जिस प्रकार पानीके बहावमें कभी कभी बाँध टूट जाता है, उसी प्रकार परोगारकी इस उमंगने स्वार्थ और भागने बाँधको तोड़ दिया। वे पास-जुक गद्दा लीकी आशय देख कर बोले—माता, यह अपना किताब है। मुझे अब अधिक न चाहिए। यह देखो रामरक्षाका नाम यहीने उड़ा देता है। मुझे कुछ नहीं चाहिए, मैंने अपना सब कुछ पा लिया। धान तुम्हारा रामरक्षा तुम्हें मिल जायगा।

पछतावा

१

पण्डित दुर्गानाथ जब कालेजसे निकले तो उन्हें जीवन-निर्वाहकी चिन्ता उपस्थित हुई। वे दयालु और धार्मिक थे। इच्छा थी कि ऐसा काम करना चाहिए जिससे अपना जीवन भी साधारणतः सुखपूर्वक व्यतीत हो और दूसरोंके साथ मलाई और सदाचरणका भी अवसर मिले। वे सोचने लगे—यदि किसी कार्यालयमें क्लर्क बन जाऊँ तो अपना निर्वाह हो सकता है किन्तु सर्वसाधारणसे कुछ भी सम्बन्ध न रहेगा। वकालतमें प्रविष्ट हो जाऊँ तो दोनों बातें सम्भव हैं, किन्तु अनेकानेक यत्न करनेपर भी अपनेको पवित्र रखना कठिन होगा। पुलिस-विभागमें दीन-पालन और परोपकारके लिए बहुतने अवसर मिलते रहते हैं, किन्तु एक स्थतन्त्र और सद्बिचार-प्रिय मनुष्यके लिए वहाँकी हवा हानिप्रद है। शासन-विभागमें नियम और नीतियोंकी भरमार रहती है। कितना ही चाहो पर वहाँ कदार्द और डॉढ़-छपटने बचे रहना असम्भव है। इसी प्रकार बहुत सोच-विचारके पश्चात् उन्होंने निश्चय किया कि किसी जमींदारके वहाँ 'मुख्तार आम' बन जाना चाहिए। वेतन तो अत्यन्त कम मिलेगा, किन्तु दीन-श्रेष्ठिद्वारा रात दिन सम्बन्ध रहेगा, उनके साथ महत्त्ववद्धारका अवसर मिलेगा। साधारण जीवन-निर्वाह होगा और विचार दृढ़ होगा।

दुर्गानाथने एक सम्प्रतिभाजी जमींदार से। पं० दुर्गानाथने उनके पास जाकर प्रार्थना की कि मुझे भी अपनी भेदा में रतानर वृत्तार्थ योजिष। मुँकरसाहबने हन्टे सिगमे पेर तक देगा और कहा—पण्डितजी, आपको अपने वहाँ रहनेमें मुझे बड़ी प्रसन्नता होती, किन्तु आपके योग्य मेरे वहाँ कोई रथाय नहीं देना सकत।

दुर्गानाथने कहा—मेरे लिए किसी विशेष स्थानकी आवश्यकता नहीं है। मैं हरद्वार काम कर सकत हूँ। जेउन आप लो कुछ दय्यतापूर्वक हने में रीतिरार वरिगा। मैंने तो यह संकल्प कर लिहा है कि बिबा किनी रीति

उचित है। लेकिन पण्डितजीकी बातका उत्तर देना आवश्यक था, अतः कहा—महाशय, सत्यवादी मनुष्यको कितना ही कम वेतन दिया जावे वह सत्यको न छोड़ेगा और अधिक वेतन पानेसे बेईमान सच्चा नहीं बन सकता है। सच्चाईका रूपसे कुछ सम्बन्ध नहीं। मैंने ईमानदार कुली देखे हैं और बेईमान बड़े बड़े घनाढ्य पुरुष। परन्तु अच्छा, आप एक सज्जन पुरुष हैं। आप मेरे यहाँ प्रसन्नतापूर्वक रहिए। मैं आपको एक इलाकेका अधिकारी बना दूँगा और आपका काम देखकर तरफ़ी भी कर दूँगा।

दुर्गानाथजीने २०) मासिकपर रहना स्वीकार कर लिया। यहाँमें कोई दारि भीलपर कई गाँवोंका एक इलाका चाँदपारके नामसे विख्यात था। पण्डितजी इसी इलाकेके कारिन्दे नियत हुए।

२

पण्डित दुर्गानाथने चाँदपारके इलाकेमें पहुँच कर अपने निवासस्थानको देखा, तो उन्होंने कुँवरसाहबके कथनको विलकुल सत्य पाया। यथार्थमें रियासतकी नौकरी सुख-सम्पत्तिका घर है। रहनेके लिए सुन्दर बंगला है जिसमें बहुमूल्य बिछौना बिछा हुआ था। सैरघों बीनेकी सीर, कई नौकर-चापर, पितने ही चपरासी, सवारीके लिए एक सुन्दर टॉगन, सुख और टाढ-बाटके सारे सामान उपस्थित। किन्तु इस प्रकारकी मज्जाबट और निलामसी सामग्री देखाकर उन्हें उतनी प्रसन्नता न हुई। क्योंकि इसी मजे हुए बंगलेके चारों ओर किसानोंके खोंपड़े थे। फूमके घरोंमें मिट्टीके बर्तनोंके सिवा और सामान ही पथा था। वहाँके लंगोमें यह बंगला फोटके नामसे विख्यात था। लड़के उसे भाकी दित्ति देगते। उसके चबूतरपर पेर रगनेवाले उन्हें साहस न पड़ता। इस दीनताके बीचमें इतना बड़ा परमार्थशुनक दण्ड उनसे लिए अत्यन्त हृदय-विदारक था। किसानोंकी यह दशा थी कि सामने आते हुए घरघर खोंपते थे। चापरगी लोग उनसे दण्ड वसूल करने में कि पशुओंके साथ भी ऐसा नहीं होता है।

पहले ही दिन कई ही किसानोंने पण्डितजीसे अपने प्रकारके बदाम, भेंदके रूपमें उपस्थित किये, किन्तु लक्ष में सब लीटा देने मजे तो उन्हें बहुत ही आनन्द हुआ। किसान प्रसन्न हुए, किन्तु चपरासीजीका र. ट. दण्डने मना। नई और बहार मित्रकर्मों आये, किन्तु लोग दिये गये। भरीयोंके घरोंमें

कुँवरसाहब—आज कौड़ी कौड़ी चुकाकर यहाँसे उठने पाओगे। तुम लोग हमेशा इसी तरह हीला हवाला किया करते हो।

मलूका (विनयके साथ)—हमारा पेट है, सरकारकी रोटियाँ हैं, हमको और क्या चाहिए ? जो कुछ उपज है वह सब सरकारहीकी है।

कुँवरसाहबसे मलूकाकी यह वाचालता सही न गई। उन्हें इसपर क्रोध आ गया; राजा-रईस ठहरे। उन्होंने बहुत कुछ खरी खोटी सुनाई और कहा—कोई है ? जरा इस बुढ़ेका कान तो गरम करो, यह बहुत बड़ बड़ कर बातें करता है। उन्होंने तो कदाचित् धमकानेकी इच्छासे कहा, किन्तु चपरासियोंकी आँखोंमें चाँदपार पटक रहा था। एक तेज चपरासी फादिरखौंने लपक कर बूढ़ेकी गर्दन पकड़ी और ऐसा धक्का दिया कि बेचारा जमीनपर जा गिरा। मलूकाके दो जवान बेटे वहाँ चुपचाप खड़े थे। बापकी ऐसी दशा देखकर उनका रक्त गर्म हो उठा। वे दोनों झपटे और फादिरखौंपर दूट पड़े। धमाधम शब्द सुनाई पड़ने लगा। साँसाहबका पानी उतर गया, साफ़ा अलग जा गिरा। अचकनके टुकड़े टुकड़े हो गये। किन्तु जवान चलती रही।

मलूकाने देखा, बात बिगड़ गई। वह उठा और फादिरखौंको घुसाकर अपने लड़कोंको गालियाँ देने लगा। जब लड़कोंने उसीको ढौंटा, तब दौड़कर कुँवरसाहबके चरणोंपर गिर पड़ा। पर बात यथार्थने बिगड़ गई थी। बूढ़ेके इस विनीत भावका कुछ प्रभाव न हुआ। कुँवरसाहबकी आँखोंने मानो आगके अक्षरों निकल रहे थे। वे बोले—बेईमान, आँखोंके सामनेसे दूर हो जा। नहीं तो तेरा खून पी जाऊँगा।

बूढ़ेके शरीरमें रक्त तो अब पैसा न रहा था किन्तु कुछ गर्मी अवशेष थी। समझता था कि ये कुछ न्याय करेंगे, पन्ना यह घटकार हुनकर बोला—सरकार, तुमपैने आपने दरथाभर पानी उतर गया और तितपर सरकार हमीको डौंते हैं। कुँवरसाहबने कहा—सुन्दरी रज्जुन सभी बना डाली है, अब उतरेगी।

दोनों लड़के मत्ते बोले—सरकार बरना अपना पैने कि शिर्की दस्तक देगे।

कुँवरसाहब (घेठकर)—रपदा पीछे भेजे, पहले देगेने कि दस्तक किम्नी है !

बकाया लगानकी नालिश की जायगी, फसल नीलाम करा लूँगा। जब भूखे मरेंगे तब सूझेगी। जो रुपया अब तक वसूल हो चुका है, वह बीज और ऋणके खातेमें चढ़ा लीजिए। आपको केवल यही गवाही देनी होगी कि यह रुपया मालगुजारीके मदमें नहीं कर्जके मदमें वसूल हुआ है। वम।

दुर्गानाथ चिन्तित हो गये। सोचने लगे कि क्या यहाँ भी उनी आपत्तिका सामना करना पड़ेगा जिससे बचनेके लिए इतने सोच विचारके बाद, हम शान्ति-कुटीरको ग्रहण किया था? क्या जान-बूझकर इन गरीबोंकी गर्दनपर घुरी फेरें, इसलिए कि मेरी नौकरी बची रहे? नहीं यह मुझसे न होगा। बोलें—क्या मेरी शहादत बिना काम न चलेगा?

कुँवरसाहब (क्रोधमें)—क्या इतना कहनेमें भी आपको कोई उद्य है?

दुर्गानाथ (दुविधामें पड़े हुए)—जी, यों तो मैंने आपका नमक खाया है। आपकी प्रत्येक आज्ञाका पालन करना मुझे उचित है, किन्तु न्यायालयमें मैंने गवाही कभी नहीं दी है। सम्भव है कि यह कार्य मुझसे न हो सके। अतः मुझे तो क्षमा ही कर दिया जाय।

कुँवरसाहब (शासनके ढंगसे)—यह काम आपको करना पड़ेगा, इसमें 'हाँ-नहीं'की आवश्यकता नहीं। आग आपने लगाई है, बुझायेगा कौन?

दुर्गानाथ (हठके साथ)—मैं शूठ कदापि नहीं बोल सकता, और न इस प्रकार शहादत दे सकता हूँ।

कुँवर साहब (कोमल शब्दोंमें)—रूपानिधान, यह शूठ नहीं है। मैंने शूठका व्यापार नहीं किया है। मैं यह नहीं कहता कि आप स्वयंसाधन होना अस्वीकार कर दीजिए। जब जागनी मेरे पक्षी हैं, तो मुझे अनिश्चय है कि जादे रुपया पक्षके मदमें वसूल करें या मालगुजारीके मदमें। यदि इनकी-नी बातों आप शूठ समझते हैं तो आपकी अस्वस्थता है। अभी आपने समझ देया नहीं। देखी मछलीके लिए मत्तारमें रखा नहीं। आज मैंने यहाँ नौकरी पर रहे हैं। हम सेवक गर्मज दिवस काजिए। धार कि एक और होनहार पुरुष है। अभी जागरी स्वयंसे बहुत दिन तक बरता है और बहुत काम करता है। अन्तों क्षम पर धर और न पक्ष पक्ष करके ही अपने जीवनमें आनन्द प्राप्त करे। निश्चय ही न भयं कृत हो होता। सम्भवतया शायद उन्मत्त है किन्तु इसकी भी क्षमा है।

कादिरखौने रोकर अपने सिरकी चोट दिखाई। सबके पीछे पड़ित दुर्गाना-
थकी पुकार हुई। उन्हींके बयानपर निपटारा होना था। वकील साहबने
उन्हें दूध तोतेकी भौंति पढा रक्खा था, किन्तु उनके मुखसे पहला वाक्य
निकला ही था कि मजिस्ट्रेटने उनकी ओर तीव्र दृष्टिसे देखा। वकील साहब
बगलें झोंकने लगे। मुख्तार-आमने उनकी ओर धूर कर देखा। अहलमद
पेशकार आदि सबके सब उनकी ओर आश्चर्य्यकी दृष्टिसे देखने लगे।

न्यायाधीशने तीव्र स्वरमें कहा—तुम जानते हो कि मजिस्ट्रेटके सामने
सबे हो ?

दुर्गानाथ (दृढतापूर्वक)—जी हाँ, मली भौंति जानता हूँ।

न्याया०—तुम्हारे ऊपर असत्य भाषणका अभियोग लगाया जा सकता है।

दुर्गानाथ—अवश्य यदि मेरा कथन झूठा हो।

वकीलने कहा—जान पड़ता है किसानोंके दूध, घी और भेंट आदिने यह
काया-पलट कर दी है और न्यायाधीशकी ओर सार्थक दृष्टिसे देखा।

दुर्गानाथ—आपको इन वस्तुओंका अधिक तजरका होगा। मुझे तो
अपनी लखी रोटियाँ ही अधिक प्यारी हैं।

न्यायाधीश—तो इन आसामियोंने सब रुपया बेचाफ कर दिया है ?

दुर्गानाथ—जी हाँ, इनके जिम्मे लगानकी एक कौड़ी भी बाकी नहीं है।

न्यायाधीश—रसीदें क्यों नहीं दीं ?

दुर्गानाथ—मेरे मालिककी आता।

६

मजिस्ट्रेटने नालिशें दिसमित कर दीं। कुँवरसाहबको ज्यों ही हम'पराज-
पती राबर मिली, उनके कोपकी भाषा सीमागे पाहर हो गई। उन्होंने
मजिस्ट्रेट दुर्गानाथको सेजमें बुलाकर कहे—नमकहराम, निशानभाती, गुट।
तुमने उल्लास कितना आदर किया, किन्तु कुँसेकी पूँछ नहीं गीपी हो सकती
है। अन्नमें निशानभाती पर ही गया। यह गलत। तुमने कि ५० दुर्गानाथ
मजिस्ट्रेटका पैसा लाने की मुझसे आग्रह की कुँसेकी ओर बाग'दुपत्र मुझसे
कर सकते हुए। नहीं तो उन्हे हम गाली दे सकते हैं। तुम दिन-रात की ओर
मुझ पीनेकी आग्रहकता करती।

कुँवरसाहबका चेहरेमें निरंतर अभिमान था। बाँटवार बहुत बड़ा इनाम

है कि हमारा हिसाब-किताब देखकर जो कुछ हमारे ऊपर निकले, बताया जाय। हम एक एक कौड़ी चुका देंगे, तब पानी पीयेंगे।

कुँवरसाहब सन्न हो गये। इन्हीं रुपयोंके लिए कई बार खेत फटवाने पड़े थे। कितनी बार घरोंमें आग लगावाई। अनेक बार माग-पीट की। कैसे कैसे दंड दिये। और आज ये सब आपसे आप सारा हिसाब-किताब साफ करने आये हैं। यह क्या जादू है।

मुल्तारआम साहबने कागजात खोले और आसामियोंने अपनी अपनी पोटलियाँ। जिसके जिम्मे जितना निकला, वे-कान पूछ हिलाये उतना द्रव्य सामने रख दिया। देखते देखते सामने रुपयोंका ढेर लग गया। छह सौ रुपया घातकी घातमें वसूल हो गया। किसीके जिम्मे कुछ बाकी न रहा। यह सत्यता और न्यायकी विजय थी। कठोरता और निर्दयतासे जो काम कभी न हुआ वह धर्म और न्यायने पूरा कर दिखाया।

जबसे ये लोग मुकद्दमा जीत कर आये तभीने उनको रुपया चुकानेकी धुन सत्तार थी। पंडितजीको वे यथार्थमें देवता समझते थे। रुपया चुका देनेके लिए उनकी विशेष आशा थी। किसीने बेल, किसीने गहने बन्धन रखे। यह सब कुछ सहन किया, परन्तु पंडितजीकी घात न टाटती। कुँवरसाहबके मनमें पंडितजीके प्रति जो घुरे बिचार थे वे सब भिट गये। उन्होंने सदासे कठोरतासे काम लेना सीखा था। उन्हीं नियमोंपर वे चलते थे। न्याय तथा सत्यतापर उनका विश्वास न था। किन्तु आज उन्हें प्रत्यक्ष देख पड़ा कि सत्यता और कोमलतामें बहुत बड़ी शक्ति है।

वे आसामी मेरे हाथसे निरुल गये मे। मैं इनका क्या बिगाड़ सकता था ? अबद्वय यह पण्डित रुक्मा और धर्मोत्सा पुण्य था। उसमें दूरदर्शिता न हो, काल-ज्ञान न हो, किन्तु इनमें कोई छन्देह नहीं कि यह निष्पक्ष और सच्चा पुण्य था।

८

कैसी ही शक्ती उन्नु क्यों न हो, जब तक इनकी उम्मी आत्मशुद्धता नहीं होती तब तक इनकी दृष्टिमें उत्तरा गौतम नहीं होता। इसी दूर की किसी समय अशक्तियोंके मोल मिट जाता है। कुँवरसाहबका काम इस निष्पक्ष पुण्यने दिना एक नही था। आत्मशुद्धि-के इस नदी

ऑफ् वाईसके सुपुर्द करूँ तो वहाँ भी ये ही सब आपत्तियाँ। कोई इधर दयायेगा कोई उधर। अनाथ बालकको कौन पूछेगा ! हाय, मैंने आदमी नहीं पहिचाना। मुझे हीरा मिल गया था, मैंने उसे ठीकरा समझा। कैसा सच्चा, कैसा वीर, दृढप्रतिज्ञ पुरुष था। यदि वह कहीं मिल जावे तो इस अनाथ बालकके दिन फिर जायें। उसके हृदयमें करुणा है, दया है। वह एक अनाथ बालकपर तरस रसायगा। हा ! क्या मुझे उसके दर्शन मिलेंगे ! मैं उस देवताके चरण धोकर माथेपर चढ़ाता। आँसुओंसे उसके चरण धोता। वही यदि हाथ लगाये तो यह मेरी दृवती नाच पार लगे।

९

ठाकुर साहबकी दशा दिनपर दिन विगड़ती गई। अब अन्तःकाल आ पहुँचा। उन्हें पंडित दुर्गानाथकी रट लगी हुई थी। बरबोका मुँह देरते और कलेजेसे एक आह निकल जाती। बार बार पछताते और हाथ मलते। हाय ! उस देवताको कहाँ पाऊँ ! जो कोई उसके दर्शन करा दे, आधी जायदाद उसके न्योछावर कर दूँ।—प्यारे पंडित ! मेरे अपराध क्षमा करो। मैं अन्धा था, अज्ञान था। अब मेरी बाँह पकड़ो। मुझे दृबनेसे बचाओ। इस अनाथ बालकपर तरस रसाओ।

दितार्थी और सम्बन्धियोंका समूह सामने खड़ा था। कुँवर साहबने उनकी ओर अधबुली आँखोंसे देखा। सच्चा दिलीपी कहीं देर न पड़ा। सबके चेहरेपर स्वार्थकी झलक थी। निराशासे आँखें नुँद थीं। उनकी स्त्री फूट फूट कर रो रही थी। निदान उसे हज़ा त्यागनी पड़ी। घर रोती हुई पाम जाकर बोली—प्राणनाथ, मुझे और इस अगद्वार बालकको किगर छोड़ जाते हो !

कुँवरसाहबने पीरेसे कहा—पंडित दुर्गानाथपर। ये जन्म आएँगे। उनसे कह देना कि मैंने सब कुछ उनके भेट कर दिया। वह मन्त्रिण बहिरा है।



